आरती और अंगारे

सन् १९५०-'५७ में
लिखित

बच्चन की अन्य रचनाएं

१ मैकबेथ (अनुवाद)
२ धार के इधर उधर
३ प्रणय पत्रिका
४ मिलन यामिनी
५ खादी के फूल
६ सूत की माला
७ बंगाल का काल
८ हलाहल
९ सतरंगिनी
१० आकुल अंतर
११ एकांत संगीत
१२ निशा निमंत्रण
१३ मधुकलश
१४ मधुबाला
१५ मधुशाला
१६ खैयाम की मधुशाला (अनुवाद)
१७ प्रारम्भिक रचनाएँ—पहला भाग } कविताएँ
१८ प्रारम्भिक रचनाएँ—दूसरा भाग }
१९ प्रारम्भिक रचनाएँ—तीसरा भाग—कहानियां
२० बच्चन के साथ क्षण भर (संचयन)
२१ सोपान (संकलन)

मधुशाला का अंग्रेजी और बंगाल का काल का बंगला अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

आरती और अंगारे

बच्चन

राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली



मूल्य	चार रुपये
प्रथम संस्करण	मार्च १९५८
आवरण	नरेंद्र श्रीवास्तव
प्रकाशक	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

तेजी को

'अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा'

अपने पाठको से

अग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि वड सवथ ने कहा था कि प्रत्यक कवि को वह विशेष अभिरुचि उत्पन्न करनी होती है जिसस उसकी कविता का आनद लिया जा सके। कहने का तात्पय यह है कि उसे अपने पाठका और श्रोताओ का एक वर्ग तैयार करना पडता है। वह विशष अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए कवि अपनी कविता के अतिरिक्त किन और उपकरणा का उपयोग कर सकता है, इसपर मै अपना दिमाग दौडा सकता हूँ। उदाहरणाथ, वह अपनी भूमिका अथवा लेखो के द्वारा यह बता सकता है कि उसकी रचना उसके पूर्ववर्तिया अथवा समकालीनो से किन अर्थों मे भिन्न है, उसने कौन-से विषय अपनाए है, कौन छोडे हैं, किस प्रकार की भाषा का उपयोग किया है, किस प्रकार की तकनीक का प्रयोग किया है, जीवन की किन मान्यताओ को मुखरित करने के लिए वह लिखता है और अपने पाठका अथवा श्रोताओं पर किस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है। यह सब करने का साहस वही कर सकता है जिसमें अपने कवि के प्रति अदम्य विश्वास हो, दुस्साहसी काव्य के क्षेत्र म भी होते हैं। वड् सवथ में यह विश्वास था और उन्होने इस प्रकार का बहुत कुछ लिखा भी। लिखने की आवश्यकता थी और उसके द्वारा वे अपनी कविता के प्रेमिया का एक वग बनाने मे सफल हुए। हिंदी कविया में यह विश्वास श्री सुमित्रानदन पत में था और उन्होने अपनी प्रथम कृति 'पल्लव' ('उच्छ्वास' नाम्नी लघु पुस्तिका तो प्राय मित्रा में बाटने के लिए खानगी तौर पर छपाई गई थी) की भूमिका से कुछ इसी प्रकार का काय किया।

मुझे अपने कवि में विश्वास कभी नही था, आज भी नही है, कभी आगे भी हो सकेगा, इसमें सदेह है। मन स्थितिया और परिस्थितिया के प्रति जिस प्रकार की मेरी प्रतिक्रिया होनी है और प्रतिक्रिया होने पर जिस

प्रकार की अभिव्यक्ति मैं उसे देता हूँ, यदि वह कविया की मी है तो मैं कवि हूँ, यदि वह अभिव्यक्ति कविता-सी है तो जो मैं लिखता हूँ वह कविता है। इसे परपरा से चली आती हुई कविता के प्रति मेरी आस्था भर न समझा जाय। जब मैंने लिखा था

'क्या कवि कहकर ससार मुझे अपनाए,
म दुनिया का हूँ एक नया दीवाना।'

(मधवाला)

या

'कविता कहकर जग ने तेरे क्रदन का उपहास किया।

(निशा निमत्रण)

अथवा

'कवियो की श्रेणी से अबसे मेरा नाम हटा दो।'

(मिलन यामिनी)

या

'मने ऐसा कुछ कवियो से सुन रक्खा था'—आदि आदि।

(आरती और अगार)

तब अपने मन का एक सहज भाव ही प्रतिध्वनित कर रहा था। ये प्रतिक्रियाएँ ये अभिव्यक्तिया मेरे लिए स्वाभाविक हैं। ये प्रक्रियाएँ मेरे सामान्य मानव के ही अतगत है, इतनी निकटता से, इतनी अनिवार्यता स कि मरे साथ इनका सगति बिठलाने के लिए किसीको मुझे कवि की अतिरिक्त सज्ञा देने की आवश्यकता नही, मेरे फूट पडने को छद बनाने, मरे रोदन, गायन, क्रन्दन—मर उद्‌गारो को कविता कहने की जरूरत नही।

बाबा तुलसीदास ने जब लिखा था कि 'कवि न होउँ' तो मेरी समझ में यह केवल नम्रता प्रदशन न था। भक्ति से अतर भर जाने पर राम-गुन-गान उनकी स्वाभाविक प्रक्रिया हो गइ होगी। और उन्हें सचमुच लगा होगा कि मैं कवि नही हूँ जो कुछ लिख रहा हूँ वह तो मर

सहज मानव का सहज धाम है। खैर, बड़ा की बात बड़े जानें। मैंने अपनी अनुभूति आपको बता दी।

तब जैसे मैं हूँ, वैसे ही मेरी अभिव्यक्ति है। मैं यह कहने नहीं जाता कि मैं दूसरों से कितना भिन्न हूँ, कितना उनके समान हूँ मैंने जीवन में क्या अपनाया है, क्या छोड़ा है, कैसा मेरा रहन-सहन है, बोल-चाल है, बात-व्यवहार है, क्या मेरे श्रेय प्रेय हैं जो मेरे चारों तरफ है, उनसे मैं क्या पाना चाहता हूँ, उन्हें क्या देना चाहता हूँ, उनसे अपने किन विचार भावों का आदान प्रदान करना चाहता हूँ। अंग्रेजी में कहना चाहूँगा, 'आई लिव देम।' मैं यह सब बतता हूँ। इन सब चीजों का सम्मिलित नाम है मेरा व्यक्तित्व। मेरी अभिव्यक्ति का भी एक व्यक्तित्व है।

तब जैसे मैंने अपने व्यक्तित्व से, अपनी संपूर्ण इकाई से अपने लिए 'अरि, मित्र, उदासी' बनाए हैं, वैसे ही मेरी अभिव्यक्ति भी बनाए। यदि मैं समाज के बीच अपने लिए कोई अभिरुचि जगा सका हूँ तो मेरी अभिव्यक्ति भी जगाए।

इसी आस्था से अपनी अभिव्यक्ति—अपनी कविता—के अतिरिक्त अन्य किन्हीं उपकरणों का आश्रय लेने की न मैंने कभी बात सोची और न मुझे इसकी आवश्यकता पड़ी।

यदा-कदा बाल प्रयासों की गणना न करूँ तो चार-पाँच वर्षों के सतत अभ्यास के पश्चात् १९३३ में मैंने 'मधुशाला' लिखी और उसके साथ ही मैंने अपने श्रोताओं और पाठकों का वर्ग तैयार पाया। वड्र्सवर्थ या श्री सुमित्रानंदन पंत-जैसे कवियों में अपने कवि के प्रति मुझसे कहीं अधिक आत्म विश्वास भले ही रहा हो, भाग्यवान मैं उनसे कहीं अधिक था। उनसे कहीं अधिक मुझे अपनी कविता में विश्वास था, क्योंकि मुझे अपने में, अपने मानव में विश्वास था। और अगर कुछ उस कविता के शत्रु बने, कुछ उससे उदासीन रहे तो इसपर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। मेरे भी शत्रु है, मुझसे भी उदासीन रहनेवाले लोग हैं। सजीव व्यक्तित्व और सजीव कवित्व के प्रति प्राय इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। निर्जीवों का

उपेक्षा की जाती है।

और न मेरा व्यक्तित्व ही सुस्थिर है और न मेरा कवित्व ही। दोना का विकास होता रहा है। पर, जहा मेरे कल का व्यक्तित्व मेरे आज के व्यक्तित्व मे समा गया है और उसकी अलग कोई सत्ता नही रह गई, वहा मेरी कल की कविता भी मौजूद है और आज की भी मौजूद है। जैसे मेरे कल के व्यक्तित्व में आज का व्यक्तित्व बीज रूप से वर्तमान था, जैसे मेरे आज के व्यक्तित्व में मेरे कल का व्यक्तित्व भी समाया है, वैसे ही 'मधुशाला' में भी 'आरती' का कुछ प्रकाश और 'अगारे' की कुछ चिनगारिया मौजूद थी और 'आरती और अगारे' में 'मधुशाला' का रग राग किसी न किसी रूप में समाया है और इसी प्रकार मेरी आगे की रचना में भी 'आरती' का कुछ धूप और 'अगारे' का कुछ ताप रहेगा। मेरी प्रथम रचना की क्षमताएँ—इनमें शक्तिया और कमजोरिया दोना सम्मिलित है—मेरी अतिम रचना ही सिद्ध कर सकेगी मेरी अतिम रचना ही बताएगी कि मेरी प्रथम रचना में क्या सभावनाएँ थी। नाम प्रामगिक है, सिद्धात को अमूर्त होने से बचाने के लिए। कहने का मतलब है, जैसे मेरा जीवन सागिक (आरगेनिक) है वैसे ही मेरा कविता भी है।

व्यक्ति का विकास शून्य में नही होता, समाज में होता है। समाज का बड़ा व्यापक अर्थ है। यह और बात है कि कुछ लोग समाज को समझते है, किसान-मजदूर सभा। मै यह माननेवाला हूँ कि समाज से पलायन की प्रवृत्ति भी समाज में रहकर जागती है। मेरा व्यक्ति भी समाज में विकसित हुआ है और मेरी अभिव्यक्ति भी समाज में विकसित हुई है। और दोना ने जो रूप आज लिया है—चेतन और अवचेतन कारणो से—यह विकास की एक दिशा है। इससे भिन्न दिशाएँ भी हो सकती हैं और है भी, और इसे मानने का मेरे पास कोई कारण नही कि मेरा विकास अद्वितीय है। तब मेरा ही तरह बहुतो का विकास हो सकता है मेरी ही-सी मिलती-जुलती दिशा में। मै उन बहुतो को देखता रहा हूँ और वे मुझे देखते रहे हैं और हमने विचार-भाव अनुभव।

के पारस्परिक आदान-प्रदान से एक दूसरे से प्रेरणा ली है, एक दूसरे को प्रोत्साहन दिया है। इसमें मेरी अभिव्यक्ति भी एक साधन रही है, शायद सब साधनो मे अधिक प्रमुख और मुखर भी।

आप मेरे पाठक हैं तो मैं यह मान लेता हूँ कि आपने मेरी अभिव्यक्ति का उसकी साधारणता-स्वाभाविकता, उसके व्यक्तित्व आकर्षण उसकी सजीवता-मार्मिकता और उससे सह एक मम अनुभूति के कारण स्वीकार किया है। यानी आपने उसे वैसे ही स्वीकार किया है जैसे मेरे मित्र मुझे स्वीकार करते हैं।

यह तो केवल भूमिका हुई। मेरी अभिव्यक्ति और आपमे जो सबंध है उसे मुझे बदलना नहीं—उसके बढने घटने के लिए मैं एक को ही जिम्मेदार नहीं समझूंगा। बहरहाल, वह जैसा है उससे मुझे पूरा संतोष है। बहुता को यह ईर्ष्या का विषय भी है। कभी कभी जीवन में अपने सबंधा के प्रति सचेत होने की भी आवश्यकता होती है। इन पंक्तियों से आपका कुछ और विश्वास पा और अपने में कुछ और आत्म विश्वास जगा आपसे कुछ कहना चाहता हूँ।

अपनी कविताओ का एक नया सग्रह आपके सामने रख रहा हूँ। इनमें से बहुत से गीत समय-समय पर पत्र पत्रिकाओ में प्रकाशित हो चुके हैं। आपने इन्हें पढा होगा और अपनी तरह से आपकी प्रतिक्रिया हुई होगी। मैं प्राय गीत ही लिखता रहा हूँ। गीतो की एक अपनी इकाई होती है—भावो, विचारो की, और एक हद तक अभिव्यक्ति के उपकरणो की भी, और उनका आनद लेने के लिए किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक गीत को सब-स्वतत्र अपराश्रित और अपने में ही परिपूर्ण मानकर प्रायः पढा या गाया जाता है और उसका रस लिया जाता है। अब यह गीतकार का काम है कि गीतो की परिमित परिधि के भीतर ही भावो का उद्रेक और विकास कर उन्हें वाछित परिणति पर पहुँचा दे। आप कह सकते हैं कि अगर ऐसी बात है तो इस प्रकार इन गीतो की पेशबदी करने की जरूरत आपको क्या हुई ?

अगर आपको मेरी कविता से प्रेम है तो आपने मेरे पिछले गीत-संग्रह भी देखे होंगे जैसे निशानिमंत्रण, सतरंगिनी, मिलन-यामिनी आदि। ये हैं तो गीत-संग्रह पर उनको मैं केवल गीत-संग्रह नहीं मानता, आपने भी ऐसा नहीं माना होगा। इन संग्रहों में एकसूत्रता है, भावना और अभिव्यक्ति के उपकरणों की भी एक बड़ी इकाई है जो सबपर छाई है, जो प्रत्येक गीत के स्वच्छंद व्यक्तित्व के बावजूद सबको एक दूसरे से अनिवार्य रूप में बँधा या जुड़ा सिद्ध करती है। कारण इसका यह है कि किन्हीं भावनाओं ने मुझे कुछ समय तक अभिभूत कर रक्खा है और इस बीच लिखे गीतों में एक प्रकार की समानता आ गई है। शायद परिस्थितियाँ मेरे अनुकूल होतीं तो उस भावना से मैं कोई लंबी कविता या खंड काव्य जैसी कोई चीज लिख सकता था—महाकाव्य के नाम से ही मैं आतंकित हो उठता हूँ। अक्सर मेरे मित्रों ने मुझसे कहा भी है कि तुम कोई लंबी कविता क्यों नहीं लिखते, तुममें इसकी क्षमता है। शायद उनका कहना ठीक भी हो।

मेरा ऐसा ख्याल है कि लंबी कविता लिखने के लिए कवि को अपने समय का मालिक होना चाहिए। कविता लिखने बैठे तो उसकी आँख न घड़ी पर हो और न कलेंडर पर। मुझे ऐसा सुयोग नहीं मिल सका। मुझे अपने और अपने परिवार के लिए रोटी कपड़ा जुटाने के लिए कई तरह के बेगार करने पड़े हैं। लिखने बैठा हूँ, और लो, वक्त हो गया है कि अब कचहरी पहुँचना है, अब युनिवर्सिटी पहुँचना है अब परेड पर हाजिर होना है, अब दफ्तर जाना है। प्रेरणा की घड़ियों पर घंटे मिनट की सुइयों का शासन नहीं चलता, और जीवन की वास्तविकताएँ प्रेरणा की घड़ियों के प्रति न किसी प्रकार की उदारता दिखलाती हैं न उनको किसी तरह की छूट देती हैं। यह नहीं हो सकता कि ६ बजकर ठीक ३० मिनट पर प्रेरणा के ग्रामोफोन की सुई हटा दी जाय और ४ बजकर ३० मिनट पर जहाँ से उठाई थी वहीं फिर लगा दी जाय। प्रेरणा की सुई हटी तो फिर हटी। मैंने तो उसे एकबार हटाकर फिर उसी जगह लगाना असंभव ही

पाया है ।

पर मैं जीवन की वास्तविकताओं का आदर करता हूँ, उन्हें प्यार भी करता हूँ । कविता इसलिए नही लिखी कि और कुछ कर नही सकता या करना नहीं चाहता

'सब जगह असमय हूँ मैं इस वजह से तो नहीं तेरा हुआ हूँ ।'

वास्तविकताएँ न हों तो जीवन का कोई अर्थ नही । कविता के बिना जीवन का अर्थ हो सकता है । लिखने के लिए मैं नही जीता, जीवन प्रशस्त करने के लिए लिखता हूँ । मगर मुझसे कोई कहे कि जाओ आज से तुम्हारी सारी फिक्रें मैंने अपने ऊपर ले ली, तुम आराम से लिखो, तो मेरा लिखना बंद हो जायगा । कवि का यही चित्र मेरे मन को भाता है

'बोझ सिर पर, कंठ में स्वर'

हमारी अवधी में एक कहावत प्रचलित है, 'पूतौ मीत, भतारौ मीत किरिया केकर खाऊँ ।' अर्थात् पुत्र भी प्यारा है, पति भी प्यारा है, किसकी कसम खाऊँ । जीवन की वास्तविकताएँ भी प्यारी हैं, प्रेरणा की घड़ियाँ भी प्यारी हैं, किनको बलिदान किया जाय । मैंने एक समझौता कर लिया है, और बहुत दिनों से उसे चला रहा हूँ । मैंने समझ लिया था कि लंबी रचना मेरे बस की नहीं । क्यों न अपनी उस भावना को, जो लंबी रचना माँगती है, इस प्रकार विघटित कर दिया जाय कि उसके एक एक खंड को लेकर छोटी-छोटी रचना कर दी जाय । घनी वास्तविकताओं के बीच भी घट-दो घटे का वक्त तो ऐसा निकाला ही जा सकता है कि उसमें इस छोटी सी रचना को पूरा कर दिया जाय । मेरे संग्रहों में गीतों की अलग अलग इकाई और उनकी पारस्परिक संबद्धता का शायद यही राज है ।

या एडगर एलेन पो के इस सिद्धांत में भी मुझे कुछ सत्यता प्रतीत होती है कि कविता लंबी हो ही नहीं सकती, क्योंकि मनुष्य का मस्तिष्क तीव्र भावनाओं के आवेग को अधिक समय तक नहीं झेल सकता। जब कविता लंबी होती है तब भावनाएँ अपनी गंभीरता से हटकर भिन्न

पट हो जाती है। एक और अग्रज लेखक का कथन मुझे स्मरण है—उनका नाम भूल गया हूँ—कि प्रत्येक लम्बी कविता अनेक छोटी कविताओं का धारावाहिक रूप है। सम्भव है, मेरी रचनाओं के पीछे मेरी सीमाएँ ही नहीं, इस प्रकार की कोई धारणा भी अनजाने काम कर रही हो। मैंने अभी इसका विशेष विश्लेषण नहीं किया।

'मिलन यामिनी' प्रकाशित कर देने के पश्चात् मेरे मन में कुछ ऐसे भावों विचारों का मंथन आरंभ हुआ कि बहुत दिनों तक मैं यह निश्चय ही न कर पाया कि उनकी अभिव्यक्ति किस तरह से आरम्भ करूँ। मूल बात मैं क्या कहना चाहता हूँ, यह तो स्पष्ट थी। वह अभी नहीं बताऊँगा। पर जब उसकी अभिव्यक्ति के रूप की कल्पना की तो मुझे लगा कि जैसे किसी महान काव्य (महाकाव्य नहीं) के प्राणों की धड़कन सुन रहा हूँ। इससे मैं डरकर भागा। इसे भूल जाने के लिए मैंने कई उपाय किए। धड़कन बंद नहीं हुई। मैं उसे अपनी छाती में ले गया तो मेरा विस्फोट ही हो जायगा। और तब वही समझौता, वही विघटन की रीति काम आई। गीतों से ही उसको व्यक्त करूँगा, पर इसके लिए ढाई-तीन सौ गीत लिखने होंगे।

पचीस-तीस गीत लिखे थे कि मैं इंग्लैंड चला गया। अपनी डाक्टरेट के संबंध में वहाँ बहुत कुछ पढ़ना लिखना था। रमणीक देश था, बहुत कुछ देखना-करना भी था। फिर भी वहाँ सौ से ऊपर कविताएँ लिखीं, जिनमें कुछ मुक्त छंद की भी थीं और यह स्वाभाविक ही है कि इन बहुत सी कविताओं में मेरे प्रवास की अनुभूति और वातावरण की छाप पड़ी है—कहाँ और कैसे, इसे देखना मेरी समझ में, कल्पना प्रवण पाठक के लिए कठिन नहीं होना चाहिए। मेरे प्रवास में ये मेरे गीत देश की पत्रिकाओं में छपते रहे।

यह भी सोच लिया था कि इस बड़े संग्रह का नाम क्या दिया जाय। बाबा तुलसीदास के गीत संग्रह 'विनय पत्रिका' से यह प्रेरणा ली कि इसे 'प्रणय पत्रिका' कहा जाय। उनका बीज मंत्र विराग तो इसका राग

विराग की उस आकाशी स्थिति को तो विरले संत ही पा सकते हैं, पर अपनी इस धरती पर जो बहुरंग अनुभूतियाँ हैं वे भी हमारी आस्था मांगती हैं और हमारे कंठों से मुखरित होने का अधिकार रखती हैं और उन्हीं को वाणी देने का प्रयास इन गीतों में किया गया। पर शायद एक स्थिति ऐसी भी है जहाँ राग और विराग एकाकार हो जाते हैं और दोनों मिल कर एक ऐसे जीवन की संवेदना करते हैं जो दोनों से परे है।

'प्रणय पत्रिका' शीर्षक से ही कई गीत पत्र-पत्रिकाओं में निकले। इंग्लैंड से लौटने पर गीतों को देखकर, जिनकी संख्या अब सौ से ऊपर पहुँच चुकी थी, मुझे यह आभास हुआ कि अभी जो कुछ कहना चाहिए था उसका एक भाग ही कहा गया है, और मैंने कविताओं को संग्रह का रूप देने का विचार छोड़ दिया। परंतु, मेरे बहुत से पाठक जो गीतों को पत्रों में देख चुके थे, उन्हें संग्रह रूप में देखने को उत्सुक थे। इसलिए ५६ गीतों का एक संग्रह मैंने 'प्रणय पत्रिका' के नाम से प्रकाशित कर दिया। इंग्लैंड से लौटकर मैं बहुत अस्वस्थ हो गया था। पुस्तक ज्यों त्यों प्रेस में दे दी गई। एक मेरे विद्यार्थी ने चयन किया, मैंने गिनती की चार पंक्तियाँ भूमिका के नाम पर लिखी। वास्तव में जो बातें मैं आज कह रहा हूँ, वे मुझे उस समय कहनी थी।

अब सौ गीतों का यह संग्रह छप रहा है। ये सब 'प्रणय पत्रिका' की कल्पना के ही अंतर्गत हैं। कभी मेरे मन में आया था कि इसे 'प्रणय पत्रिका-दूसरा भाग' कहा जाय। फिर इस संग्रह को एक अलग सत्ता देने के विचार ने इसे 'आरती और अंगारे' नाम दे दिया गया। मेरी कल्पना की 'प्रणय पत्रिका' अब भी पूरी नहीं है। जो अभी और कुछ कहने को है उसके लिए मैं सौ-सवा सौ गीत और लिखूँ तो शायद कह सकूँ कि मैंने अपनी कल्पना के प्रति न्याय किया। इन गीतों का मैं कब तक लिख सकूँगा मैं नहीं जानता। शेष गीत लिखे जा सकें तो सबको मैं फिर से एक विशेष क्रम में रखकर एक नाम से ही पुकारना चाहूँगा।

१९५० में जो कल्पना मेरे मन में उठी थी, इन सात वर्षों में वह

विकसित भी होती रही है। आगे चार पाच वर्षों तक, जब मैं उसे पूर्ण तया अभिव्यक्त करने की आशा रखता हूँ, इसका क्या रूप हो जायगा, मैं स्वय नहीं जानता।

आपने कभी किसी चित्रकार को चित्र बनाते देखा है, उदाहरणार्थ किसी मनुष्य का चित्र ? वह ऐसा नहीं करता कि पहले नख बनाए, फिर उँगलियां, फिर पांव फिर पिंडुलियां, घुटने और उसी क्रम से चोटी तक पहुँच जाय। वह अपनी तूलिका से कभी एक रेखा पांव की बनाता है, कभी सिर की, कभी हाथ की और इन रेखाओं में कोई क्रम, कोई सगति, कोई विकास देखना तब तक सभव नहीं जब तक चित्रकार की कल्पना न जान ली जाय। 'प्रणय पत्रिका' और 'आरती और अगारे' के गीत उन्हीं रेखाओं के समान हैं जो अभी अपने स्थान पर भी नहीं। मुझे एक दूसरा रूपक सूझ रहा है जो अधिक समीचीन होगा। आपने देखा होगा, बच्चे एक तरह का खेल खेलते हैं। बाजारों में लकड़ी या गत्ते के ऐसे टुकड़ो के बक्स मिलते हैं जिनको अगर ठीक से जोड़ा जाय तो किसी आदमी या जानवर की आकृति बन जाती है। इन टुकड़ों का ढेरी में रख दिया जाय तो आदमी या जानवर का कोई आभास नहीं मिलता। मैं चाहूँगा कि मेरे गीत उन्हीं टुकड़ों के समान समझे जायें। टुकड़े तो बिल्कुल निरर्थक होंगे। गीत होने के कारण प्रत्येक रचना अपना अलग अर्थ भी रखती है। जब तक मैं उनका क्रम स्थापित नहीं कर देता आपसे धीरज रखने की प्रार्थना कर सकता हूँ। 'विनय पत्रिका' का खाका आप अपने सामने रखें। मैंने 'प्रणय पत्रिका' का खाका कुछ कुछ वैसा ही रखने को सोचा है। जो भी गीत आपके सामने हैं, अगर आप चाहें तो, उनको एक नमूने के क्रम में लगा सकते हैं। मैंने दोनो सग्रहों के गीतों का जो क्रम अपने लिए बनाया है उसमें मुझे अपनी कल्पना के रूप का कुछ आभास तो मिलता है, पर बहुत-सी खाली जगहें भी दिखाई देती हैं। मुझे इन्हें भरना बाकी है।

इन गीतों के बारे में मुझे सिर्फ दो एक बातें और कहनी हैं। ये गीत

है, इन्हें आँख से, मौन रहकर मत पढिए, इनको स्वर दीजिए, गाइए—कुछ गीत गेय नही हैं, उन्हें सस्वर पढिए, भावानुरूप स्वर से। किसीसे गवाकर या पढाकर सुनिए। यानी छपे हुए शब्दो को, जिसे अग्रेजी में कहेंगे, 'मार्जदिंग' की जानी चाहिए, उन्हें मुख से 'मुखर' किया जाना चाहिए। सब गीतो को एक सिरे से दूसरे सिरे तक न पढ जाइए। यह उपन्यास नही है। मैं तो कोई अच्छा गीत सुन लेता हूँ तो बहुत देर तक दूसरा नही सुन सकता। कोई गीत आपको विशेष प्रिय लगे तो उसे फिर फिर पढिए। अच्छा गीत दूसरी-तीसरी बार पढने पर अधिक अच्छा लगना चाहिए।

अत में एक आगाही। इस–उस कोने से आपको लोगो के ऐसे भी स्वर सुनाई देंगे कि अब गीतो का युग बीत गया है। आप अचरज मत कीजिएगा यदि ये लोग कल कहते सुने जाय कि अब हँसने-रोने का, प्रम करने का, सघपरत होने का युग बीत गया है। आज जो ऐसी बातें कह रहे हैं उन्ही के बाप चाचा ने जब 'मधुशाला' निकली थी तो कहा था, यह मस्ती का राग अलापने का युग नही है, निशा निमत्रण' निकला तो कहा था, यह रोदन क्रदन का युग नही है, 'सतरगिनी' निकली तो कहा था, यह प्रेम के तराने उठाने का युग नही है, और उनके बेटो भतीजो न 'प्रणय पत्रिका' निकली तो कहा, यह तो बीते युग की बातें हैं। मेरे पाठको ने इन तथा अन्य सग्रहो में जो सह एव सम अनुभूति पाई है उसने उनके इन फतवा को गलत ही साबित किया है।

'प्रणय पत्रिका' का प्रथम सस्करण समाप्त हो गया है। शीघ्र ही नया सस्करण छपेगा, और आप उसके और 'आरती और अगारे' के गीतो को मेरी एक ही कल्पना के अतगत मानकर उनका रस लीजिए। आगे के गीत म मेरे और तुम्हारे बीच' शीर्षक स लिखना चाहूँगा जो आपका भविष्य में पत्र पत्रिकाओ मे मिलेंगे।

विदेश मत्रालय,
नई दिल्ली।
१८ १२-१९५७

बच्चन

गीतों की प्रथम पंक्ति-सूची

*विलियम बटलर इट्स पर टिप्पणी पृष्ठ २४३ पर देखें।

१

मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।
निद्रा के नीलम अबर मे
स्वप्न-श्वेत गज अरुण जलज ले
मेरे मन-तडाग मे उतरे,
लहरे उठ-उठ, गिर-गिर मचले,
हो जाए जब जल-कोलाहल
शात, कमल तल मे आरोपें,
और अतल से एक उठे सगीत गगनभेदी अविरामी।
मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।

एलोरा - ऐरावत जैसे
भार पर्वताकार उठाए,
भारत की प्राचीन कला का,
सस्कृति का, वेपीठ झुकाए,
उसी तरह से नए हिंद की
नई जिंदगी, नई जवानी,
ताकत, मस्ती, हस्ती, बनने की मेरी वाणी हो कामी।
मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।

धूलि उठा नित सिर पर धारे,
खोज करे उस रज के कण की,
जिसको छूकर ऊपर उठती
रूह रहित प्रतिमा पाहन की,
ढूह अगर मिट्टी के रोकें
राह ढहा दे क्रीडा में ही,
औ' अपनी रौ चले भले ही भूकें श्वान, करें बदनामी।
मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।

गज को ग्राह मिला करते हैं
लेकिन इससे मत घबराए,
जग जिंदों से आशा करता
अपना बल परखें, परखाएँ,
बस न चले, सबकी सीमा है,
तो यह दृढकर, एक जगह पर
झुकना उठने से बढकर है,
झुकना उठने से भी दुष्कर,
हो समर्थ अंतिम साहस कर कहने में, 'प्रभु, पाहि नमामी।'
मेरा कवि गज गरिमा समझे, मेरी कविता हो गजगामी।

२

कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूँगा मैं, माये !

अर्थ समझती बुद्धि जगाई,
शब्द समझते कान सयाने,
भाव समझता गह्वर अंतर,
लय मे डूब-डूब अनजाने

जीवन के सब अंग उभरते
कोई अद्भुत-सी निधि लेकर,

कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूँगा मैं, माये !

लय, जिसकी गति पर नभमंडल
मे तारक दल देते फेरे,
नर्तन करती है छै ऋतुएँ,
आते-जाते साँझ सवेरे,

हृदय प्रिया-प्रियतम के जिसपर
धड़का करते आलिंगन मे,

यह मेरे सुर के बस हो तो, उर उकसा लूँगा मैं, माये !
कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूँगा मैं, माये !

काम-धाम से कब डरता मैं,
कब मिट्टी की निठुराई से,
पर यह काज नही सरता है
बस हाथो की चतुराई से,

सुरभि स्वर्ग से उतरा करती,
पवन उसे बिखराता फिरता,
बीज-वपन केवल तू कर दे, फूल हँसा लूगा मैं, माये !
कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूगा मैं, माये !

मना किया सिर म लिखने को
जो, विधि ने उसको ही आंका,
नीरस को रसमय कर देना,
हो मेरी रसना का साका,
कवित, रसिक सुन तन मन धुनता
तो कवि ने एहसान किया क्या ?
नयनो म घन बन तू छा जा, रस बरसा लूगा मैं, माये !
कानो मे लय भर तू भर दे, गीत बसा लूगा मैं, माये !

३

ओ, वेदो की स्वर्गीय गिरा के गायक !
किस प्रभात का चपल पवन था
उसको छूकर आया,
जो उसकी सुकुमार सुरभि ने
तुमको विकल बनाया ?
किन तारो से उसके स्वर की
तुमने प्रतिध्वनि पाई ?—
ओ, वेदो की स्वर्गीय गिरा के गायक !—
जो तुमने गिरि-वन मे जप-तप-
कर उसको मनुहारा,
देवपुरी के झूलो पर से
भू की सेज उतारा।
आर्य, तुम्ही ने वाणी का
कौमार्य अछूता जाना,
तुम सर्वप्रथम उस मुग्धा के अधिनायक !
ओ, वेदो की स्वर्गीय गिरा के गायक !
ओसकणो से व्योम नगो तक
सार, शुभद, सुखदायी—
सब मन-तन्त्री पर झंकृतकर
तुमने तान उठाई,

सामगान गाए, जिसपर
युग-कल्प रहे लहराते,
ओ, शब्द-सुरों के पहले भाग्य-विधायक !
ओ, वेदों की स्वर्गीय गिरा के गायक !

एक वेदना, एक व्यथा का,
एक दर्द का मारा,
जो उर कुछ कहने को आतुर
वह भी रक्त तुम्हारा,
अक्षय, अमर तुम्हारी निधि में
बालक सा घबराया,
क्या मांगू अपने गीत लयों के लायक।
ओ, वेदों की स्वर्गीय गिरा के गायक !

४

तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ ।
वन पवत धर फिरते छिपते
बटमारो का नायक,
जपकर जिसको वन जाता है
महाकाव्य का गायक,
जो कि रहेगा थिर जवतक हिम-
शृ ग, लहरमय गगा,
सप्तर्षि सुझाया राजमन्त्र दुहराऊँ ।
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ ।

क्रौच मिथुन की पीर तीर-सी
धँसी तुम्हारे उर मे,
बीज रूप यह गाथा थी जो
घटी अयोध्यापुर मे,
और घटित होती हर अतर
मे यह रामकहानी,
किस युग पीडा को उर के बीच बसाऊँ ?
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ ।

महाराग अब कहाँ भाग ले
जिसमें अग जग सारा,

यही गनीमत है जाग्रत है
मानव का एकतारा,

चतुर गुनी उसपर भी जीवन
कुछ मुखरित कर लेते,
रस अर्थ रहित ध्वनियो मे मैं क्या गाऊँ।
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ।

ओ, रस के घन सघन, छंद के
निर्भर श्रवण सुहावन,
अर्थों की सरिता, वर्णों के
करुणागार सनातन,

पैठ कहा मजुल मणियो मे,
अपना जन्म सराहूँ,
क्षण बैठ किनारे सीप जुटा जो पाऊँ।
तमसा तट के कवि, तुमको शीश नवाऊँ।

५

'भारत के हे गभीर-धीर स्वर-साधक !
तुम बोले तो लगा कि जैसे
जाग हिमाचल बोला,
तुम बोले तो लगा कि जैसे
कठ सिंधु ने खोला,
सिर गिरि की चोटी-सा ऊँचा,
उर अवुधि सा गहरा,
भावना-ज्ञान के तुम समान अभिभावक !
'भारत के हे गभीर-धीर स्वर-साधक !

लगे रहे किस वन मे, कितने
युग किस तप-साधन मे ? —
जीभ निकल आई पत्तो की
जगह गहन कानन मे,
यह अरण्य-उद्घोप लेखनी-
बद्ध कौन कर पाता,
मिलते न अगर लेखक अनन्य गणनायक !
'भारत के हे गभीर-धीर स्वर-साधक !

तीन लोक के देव-दनुज-
मनुजो की जीवन गाथा,

सिद्ध, तुम्हारे बिना कौन यह
एक साथ कह पाता,
'यन्नभारते तन्नभारते—'
सत्य नहीं इतना ही,
यह गेय नहीं, तुम गा न सके जो, गायक !
'भारत के हे गंभीर-धीर स्वर-साधक !

है अपार कांतार गलों से
बेशुमार जब गाता,
अचरज क्या जो एक विहंगम–
शिशु गाते शरमाता,
डूबे तो उस ठौर जहाँ से
मुट्ठी में कुछ आए,
छूटा क्या तुमसे, भवसागर-अवगाहक !
'भारत के हे गंभीर-धीर स्वर-साधक !

६

ओ, उज्जयिनी के वाक्-जयी जगवदन !

तुम विक्रम नवरत्नो मे थे,
यह इतिहास पुराना,
पर अपने सच्चे राजा को
अब जग ने पहचाना,
तुम थे वह आदित्य, नवग्रह
जिसके देते फेरे,
तुमसे लज्जित शत विक्रम के सिंहासन।
ओ, उज्जयिनी के वाक्-जयी जगवदन !

तुमने किस जादू के बिरवे
से वह लकडी काटी,
छूकर जिसको गुण-स्वभाव तज
काल, नियम, परिपाटी,
बोली प्रकृति, जगे मृत मूर्च्छित
रघु पुरु वंश पुरातन,
गंधर्व, अप्सरा, यक्ष, यक्षिणी, सुरगण।
ओ, उज्जयिनी के वाक्-जयी जगवदन !

सूत्रधार, हे चिर उदार,
दे सबके मुख में भाषा,

तुमने कहा, कहो अब अपने
सुख, दुख, सशय, आशा,
पर अवनी से, अतरिक्ष से,
अबर, अमरपुरी से
सब लगे तुम्हारा ही करने अभिनदन ।
ओ, उज्जयिनी के वाक् जयी जगवदन !

वह वरदानमयो वाणी के
कृपा पात्र बहुतेरे,
देख तुम्हे ही, पर, वह बोली,
'कालिदास तुम मेरे',
दिया किसी को ध्यान, धैर्य,
करुणा, ममता, आश्वासन,
किया तुम्हीको उसने अपना
यौवन पूर्ण समपरा,
तुम कवियो की ईर्ष्या के विपय चिरतन ।
ओ, उज्जयिनो के वाक्-जयी जगवदन !

७

कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो !
देव गिरा से मैंने पूछा,
'सबसे सरस-पुनीता
सपति क्या तेरे मदिर मे ?'
बोली, 'गीत कि गीता ।'
गीत कि जिसमे तुमने राधा-
माधव-केलि बखानी,
जग की जड, मृत मर्यादा से निभय हो ।
कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो !
छुडा कृष्ण से भूमि-वासना—
व्रज-वधुओ की टोली,
जो लाया उस ठौर उन्हे, थी
जहाँ राधिका भोली,
मूर्ति बनी स्वर्गिक सुषमा की,
वैभव और विभा की,
युग-युग पृथ्वी पर पूजित पुण्य प्रणय हो ।
कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो !

औरो के आगे वाणी ने
बात कही या गाया,

या अपनी अद्भुत वीणा पर
कोई राग बजाया,

एक तुम्हारे ही उर-आगन
मे आकर वह नाची,

मजीर-मुखर-प्रतिध्वनित पदो मे लय हो।
कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो !

कोमल-कात पदावलियो की
पहुँचा दी वह सीमा
तुमने, देव, कि अब सब गाने-
वालो का स्वर धीमा,

जिस मग पर तुम चले सहज नृप
की गौरव गरिमा से,

गुणवत धरेंगे अपने चरण सभय हो।
कविराजराज जयदेव, तुम्हारी जय हो !

८

पडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।
गति उनकी थी सहज, ज्ञान के गहरे पारावारो मे,
मान मिला था उनको राजो, शाहो के दरबारो में,
इन बातो से बहुत प्रभावित होनेवाले दुनिया मे,
मैं सराहता क्योकि एक वे थे जग के दिलदारो मे।
भीरु, नपुसक, पाखडी के गीत नही मैं गाता हूँ।
पडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।

दक्षिण से उत्तर तक उनकी विद्वत्ता ने नापा था,
प्रतिभा उनकी देख महाविद्वानो का दल कांपा था,
पर जिससे दिल पुलके, पिघले, गले, ढले औ' बह जाए,
ऐसा भी तो राग उन्होने अपने कठ अलापा था।
सूखे, रूखे, रसहीनो के गीत नही मै गाता हूँ।
पडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।

सुना कि उनके छदो को सुन गगा भी लहराई थी,
सग प्रिया के बैठे थे वे जहाँ, वहा तक आई थी,
लहरो ने जब दिया निमत्रण तब निर्भय हो दोनो ने
मरा हुआ तट छोड अमरता की धारा अपनाई थी।
निर्जीवो के, जड-मुर्दों के गीत नही मैं गाता हूँ।
पडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।

ठीक, उन्होंने एक सुनयनी यवनी को अपनाया था,
धर्म, समाज, प्रथा का सारा बंधन काट हटाया था,
प्यार किया करते हैं पौरुषवाले, कीमत देते हैं।
जिस कारण काशी के पंडों ने उनको ठुकराया था,
ठीक उसी कारण मैं उनको बीच सभा अपनाता हूँ।
पंडित-राजा जगन्नाथ की तुमको याद दिलाता हूँ।

६

रासो-रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।
विवश जीविकोपार्जन को मैं
हुआ न किस-किस पथ का राही,
पर मेरा वश चलता तो मैं
होता कवि के साथ सिपाही,
इसीलिए तस्वीर तुम्हारी,
वीर, बसी मेरे अंतर में,
घर पर चलता कलम, समर में चलती थी तलवार तुम्हारी।
रासो-रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।

इस विस्तीर्ण रसा सरसा पर
भाव भेद, रस भेद अलेखे,
अपने छोटे-से जीवन में
मैंने जितने जाने-देखे,
वीर और शृंगार यही दो
जिंदा दिल वालों के पाए,
अपने शौर्य-वीर्य से तुम थे इन दोनों के सम अधिकारी।
रासो रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।

अपभ्रंश की ऊबड़ खाबड़
जो अनगढ़ चट्टान खड़ी थी,

लौह लेखनी से तुमने ही
काट-छाट वह मूर्ति गढी थी
भाषा की, जिसपर कवि पीढी—
दर-पीढी श्रम करते आए,
हिंदी हिंद देश मे तुमने थी सबसे पहले अवतारी।
रासो-रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।

भाषा मूर्ति नही पत्थर की—
मेरे कहने म कुछ गलती—
अष्टधातु की वह प्रतिमा है,
जो हर युग मे गलती ढलती,
तुमने तत्व दिए जो उसको,
और मिले हैं उनमे आकर,
एक गला सबको करना है
अतस्तल मे ज्वाल जगाकर,
हो सहाय इस महायज्ञ मे कुछ मेरे मन की चिनगारी।
रासो-रचनाकार, तुम्हारे प्रति मेरी वाणी आभारी।

१०

मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।
जिन राजा-रानी को तुमने
रच-रच करके गीत सुनाए,
है उनका अस्तित्व कहाँ पर,
अब इसको इतिहास बताए,
पर उर-पुर शासक तुम तब थे,
अब हो, और रहोगे आगे,
शरण भूप शिवसिंह-लखिमा के आज तुम्हारे ही पद पावन।
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।

थे न कबीर, न सूर, न तुलसी
और न थी जब बावरि मीरा,
तब तुमने ही मुखरित की थी
मानव के मानस की पीरा,
कौन गया था कर, कवि-शेखर,
आकुल-कातर प्राण तुम्हारा ?
कुसुम शरीर, हृदय पाहन का कौन तुम्हारा था मनभावन ?
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।

कहा विरत चैतन्य महाप्रभु,
कहा मनुज ममता-रत, कामी,

पर विद्यापति के चरणों के
दोनों हैं बरबस अनुगामी,
सहस विरोधों का आलिंगन
कर चलती जीवन की धारा,
भीगेगा, बच कौन सकेगा बरसेगा जब झर-झर सावन।
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे,अमृतमय बोल सुहावन।

लुटा चुकी थी अपना सब धन-
वैभव जब देवों की वाणी,
देसिल बयनों की क्षमता थी
तुमने, कवि-रंजन, पहचानी,
अश्रु लकीर तुम्हारे गालों
पर की अब गंभीर नदी है,
बाल चंद मिथिला की छत का भारत के नभ का शशि पूरन।
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।

निर्माता, तुमने नव कविता
का तन-मन इस भांति सँवारा,
दूर-सुदूर भविष्य तुम्हारे
ही शब्दों का खोज सहारा,
'जनम अवधि हम रूप निहारल
नयन न तिरपित भेल' कहेगा,
लाख लाख युग हिय-हिय बसकर होगा ही वह तिल-तिल नूतन।
मिथिला के रसमय मधुवन के, हे, अमृतमय बोल सुहावन।

११

पूर्व-पश्चिम हैं गुंजाते गीत जो,
हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।
कुछ बढा दाढी, रँगा कपडा महली
चाल दुनिया को दिखाना चाहते हैं,
कुछ जलाकर काम बनकर हीजडा निज
नाम सतो में लिखाना चाहते हैं,
किंतु जो पहुँचे हुए दरवेश उनको
भेस धरने की जरूरत कब हुई है,
पूर्व-पश्चिम हैं गुंजाते गीत जो,
हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

हाथ ढरकी और कघी से लगे थे,
आँख ताने और बाने से बँधी थी,
किंतु तन के काम मन के धाम को
छूते नही थे, साधना ऐसी सधी थी,
औ' वहाँ पर बज रही बाजतरी थी,
और अनहद नाद मे था गान होता,
प्र'ध्वनित था कठ करता शब्द केवल
जो कि ब्रह्मानद ने थे गुनगुनाए।
पूर्व पश्चिम है गुंजाते गीत जो,
हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

कह गए तुम बात अनहद की जहाँ तक
कौन उसके पार की कहने खड़ा है,
किंतु जीवन की हदों के बीच में भी
कम नहीं कहने-सुनाने को पड़ा है,
मानवों के दिल, दिलों की हसरतों को,
आस को औ' प्यास को औ' वासना को,
शोक, भय, शंका, महत्वाकांक्षा को
आज रक्खा जा नहीं सकता दबाए।
पूर्व-पश्चिम हैं गुँजाते गीत जो,
हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

जो नियता ने हृदय मुझको दिया था
अनुभवों से तूल-सा मैंने धुना है,
और उससे कातना तागे स्वरों के—
काम अपने वास्ते मैंने चुना है,
तान फैली है, नरी भी है भरी-सी,
हे जुलाहेशाह, बोलो कौन सुखमन,
कौन दुखमन तार से बीनूँ चदरिया
जो कि मेरे और जग के काम आए।
पूर्व-पश्चिम हैं गुँजाते गीत जो,
हे पीर, तुमने बैठ करघे पर सुनाए।

१२

जायस के, हे, एक-नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे ।
एक-दंत को सुमिर लेखनी
कवियो ने ली हाथ सदा ही,
एक-नयन की दीठ बचाता
आया, हर शुभ पथ का राही,
पर मैं शायर ढीठ, लीक से
हटने मे सकोच मुझे क्या,
जायस के, हे, एक नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे ।

जिसका बल, जिसकी वत्सलता
जानी मैंने माँ के पय से,
जिसकी प्रेम पकी मादकता
मलिक मुहम्मद की मधु मै से,
जिसकी पावनता, तुलसी के
चरणो से निकली सुरसरि से,
उस भाषा की त्रिगुण त्रिवेणी क्यो न बहे मेरी रग-रग मे ।
जायस के, हे, एक-नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे ।

किंतु हृदय की प्यास आज है
उन मधु घूटो की अभिलाषी,

जिनको पाकर छुए भावना
अतल, कल्पना हो आकाशी,
पर हो अपना नीड बनाए
अनुभव की छाती के अंदर,
और व्यंजना नापे शब्दो की चौमापी अवनी डग मे।
जायस के, हे, एक-नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे।

उस मधुघट से होठ लगाने
दो मुझको भी, हे कवि दानी,
जिसमे डूब निकाली तुमने
पद्मावत की रतन-कहानी,
जिसकी प्रतिध्वनियाँ आती हैं
हर नर, नारी के चित, उर से,
जिससे उजियाला होता आया है हर प्रेमी के जग मे।
जायस के, हे, एक नयन कवि, सगुन बनो तुम मेरे मग मे।

१३

वारवार प्रणाम तुम्हें है, राम-चरित के अमित पुजारी ।

उचित यही था, प्रथम तुम्हारे
चरणो मे मैं शीश नवाता,
पर न दिया वह अवसर तुमने,
हे भारति के भाग्य-विधाता,

तुम पहले से आनेवाले
कवियो के प्रति नतमस्तक थे,

आर्य, तुम्हारे आदर का मैं बन पाऊँ कैसे अधिकारी ?
वारवार प्रणाम तुम्हे है, राम-चरित के अमित पुजारी ।

तुमने अपने राम-सिया मे,
रसिया, सब जग देख लिया था,
कितने नयन विशाल तुम्हारे,
कितना गहिर-गँभीर हिया था,

जीवन, काल, कर्म गति-पथ का
अंत कहाँ है ? कौन बताए ?

नही अभी तक पहुँचा कोई, जहा नही थी पहुँच तुम्हारी ।
वारवार प्रणाम तुम्हे है, राम-चरित के अमित पुजारी ।

भला हुआ जो लगन तुम्हारी
दूर लक्ष्य की ओर लगी थी,

पाँव पडा करते थे भू पर,
आँख गगन के प्रेम पगी थी,
मग मे तुमने ठुकराकर जो
छोड दिया उसको अपनाकर,
बहुत समय पर्यंत करेगे अर्जन कीर्ति कलम कर धारी।
बारबार प्रणाम तुम्हे है, राम-चरित के अमित पुजारी।

दो मुझको वरदान, तुम्हारे
काम किसी दिन मैं था आया,
राम-भगति बहुविधि वर्णनकर
जब तुमने सतोप न पाया,
तुमने मेरी ओर निहारा
और हृदय की ताली पाई,
याद तुम्हे आया, मैं ही वह कामी जिसको नारि पियारी ?
बारबार प्रणाम तुम्हे है, राम-चरित के अमित पुजारी।

सूर, पथ मुझको दिखाओ, पद-लगा मैं हूँ तुम्हारा।
मैं कहाँ पहुँचा कहाँ से
अनुसरण कर ध्वनि तुम्हारी,
किंतु सहसा वह धरणि को
छोड़ अंबर को सिधारी,
औ' प्रतिध्वनि को पकड़कर
ढूढता कबसे तुम्हे मैं,
सूर पथ मुझको दिखाओ, पद लगा मैं हूँ तुम्हारा।

मौन बैठा आज आकर
एक सागर के किनारे,
हैं मुखर जिसकी तरगें
बोल दुहराती तुम्हारे,
बूँद आसू की नयन मे
डबडबाती-डोलती है,
खो गई नदिया जहा, तू खोजने आई सहारा।
सूर, पथ मुझको दिखाओ, पद लगा मैं हूँ तुम्हारा।

पर नही, इन लाख लहरो
मे नही है एक ऐसी,
जीभ पर जिसके नही है
बात बिल्कुल ठीक वैसी,

तुम बता जैसी गए थे,
भावना मेरी छुओ तो,
नित नई स्वर-लिपि करेगी व्यक्त मेरी अश्रु-धारा ।
सूर, पथ मुझको दिखाओ, पद-लगा मैं हूँ तुम्हारा ।

था सहज-विश्वास का युग
जबकि तुमने गीत गाया,
और मैं संदेह, शंका,
संशयों का हूँ सताया
मैं तुम्हारे श्याम से तुमको
अधिक सच मानता हूँ,
जब मुझे भगवान कहना था, तुम्हें मैंने पुकारा ।
सूर, पथ मुझको दिखाओ, पद लगा मैं हूँ तुम्हारा ।

१५

मीरा, मेरे मन का मदिर करता है तेरी अगवानी ।
तेरे मन-मदिर के अदर
गिरिधरलाल बसा करते हैं,
और अवश्य मुझे रजकण से
लिपटा देख हँसा करते हैं,
वे न कभी मिट्टी से खेले,
मैं उनको किस भाति बुलाऊँ,
मीरा, मेरे मन का मदिर करता है तेरी अगवानी ।

तेरे पद-घुंघरू का रव-रस
था बचपन मे कान समाया,
औ' उसने चित्तौड किले के
भीतर मुझको ला बिठलाया
उस वेदी के आगे जिसपर
तू तन्मय नाचा करती थी,
और वही पर गाया मैने,'वह पगध्वनि मेरी पहचानी ।'
मीरा, मेरे मन का मदिर करता है तेरी अगवानी ।

तेरे अतर का स्वर था जो
भारत के घर-घर मे गूजा,

शब्दों ने दीवाला बोला
किंतु हृदय का भाव न पूजा,
फिर भी अपने अटपट वयनों
से तू कितना कुछ कह जाती !
तू पहुँची उस ठौर जहाँ पर पहुँच नहीं पाती है वाणी।
मीरा, मेरे मन का मंदिर करता है तेरी अगवानी।

सूली ऊपर सेज सजाकर
तू अपने पी के सँग सोई,
मिलन-घड़ी में गाया तूने
जो फिर क्या गाएगा कोई,
गाना दूर अभी तो तुझसे
मुझे सीखना है तुतलाना,
शूल,फूल,कलि,ओस,दूब, दल तक सीमित मेरी नादानी।
मीरा, मेरे मन का मंदिर करता है तेरी अगवानी।

१६

कठिन काव्य के प्रेत, न डालो
मुझपर अपनी छाया,
सरल स्वभाव, सरल जीवन को
मैंने मत्र बनाया।

मेरे कुछ अगुओ को तुमने
आ अनजाने घेरा,
जिससे उनका काव्य-भवन बन
गया भूत का डेरा।

क्लिष्ट कथन है गाठ हृदय की
शब्दो के बाने मे,
जिसने गाँठ नही पडने दी
क्यो अटके गाने मे,

क्यो भटके कोशो की गलियो
मे सूनी, अँधियारी।
कविता, जगती के प्रागण मे
जीवन की किलकारी।

भूत उसी घर मे बसता है
जिसके बद किवाडे,
बद खिडकिया, नही झाँकते
जिसमे रवि शशि-तारे।

मुक्त गगन मे मुक्त पवन को
आठो पहर निमत्रण,
आओ, जाओ, अपना घर है,
बादल, विहग, प्रभजन!

भर दो मेरे अतराल को
चहक, चमक, गानो से,
इद्र धनुष के सतरगो से
बिजली के बाणो से।

कठिन काव्य के प्रेत, कभी क्या
तुमने मन-पट खोला?
कलम तुम्हारा बहुत चला, पर
कभी हृदय भी बोला?

एक बार, जब चद्रमुखी ने
'बाबा!' तुम्हे पुकारा,
एक बार तब खुली तनिक-सी
तमक तुम्हारी कारा।

तव जीवन की ह्विस विवशता
में अपनी मुसकाई,
पत्थर ने जैसे छाती में
चिन्गारी दिखलाई।

एक उसी क्षण की खातिर मैं
याद तुम्हें करता हूँ,
वर्ना तुमसे और तुम्हारे
भक्तों से डरता हूँ।

कठिन काव्य के प्रेत, न डालो
मुझपर अपनी छाया,
सरल स्वभाव, सरल जीवन को
मैंने मंत्र बनाया।

१७

रहिमन, एक समाधि तुम्हारी मेरे मन के अंदर भी है।
सुना निजामुद्दीन जहां है
वहीं कहीं मकबरा तुम्हारा,
और गुजरता कई खँडहरों
से मैं उसके पास पधारा,
उखड़े गुंबद, गिरती मेहराबों
के नीचे तुम सोए थे,
और कहा जाता है हिंदी भाषा जाग्रत सजग अभी है।
रहिमन, एक समाधि तुम्हारी, मेरे मन के अंदर भी है।

जैसे ही अपनी श्रद्धा के
मैंने तुमको फूल समर्पे,
मुझको लगा कि तुम उठ बैठे,
सहसा मेरे तन मन डरपे,
दीवारों से निकला तुम्हारे
बरवै, दोहों की ध्वनि आई,
पूछूंगा, क्या ऐसा अनुभव हुआ किसीको और कभी है।
रहिमन, एक समाधि तुम्हारी मेरे मन के अंदर भी है।

जर्जर दीवारों के मुंह में
बोल रही थी अजर जवानी,

मरी हुई मिट्टी करती थी
मुखरित अमर क्षणो की वाणी,
जिदा दिल, जिदा बोलो को
समय नही छूने पाता है,
नही, काल की छाया के ही नीचे यह ससार सभी है।
रहिमन, एक समाधि तुम्हारी मेरे मन के अदर भी है।

भ्रम था, हिली न कब्र, न पत्थर-
ईंटो से प्रतिध्वनिया आई,
केवल वह बोला—की जिसने
थी मेरे उर मे पहुनाई,
जिदा वह है जो औरो के
दिल मे अपनी जगह बनाए,
रहे न अपना, फले न अपनी, सभव यह सयोग तभी है।
रहिमन, एक समाधि तुम्हारी मेरे मन के अदर भी है।

१८

नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हें भर कंठ लगाता ।
उनकी आँख समझती मुझको
अपने को मुझको समझाती,
मेरी छाती की धड़कन का
उत्तर देती उनकी छाती,
नाम, काम, गुण, पद, वैभव के
भेद न कोई बीच ठहरते,
माना करते थे वे सबसे बढ़कर स्वर-शब्दों का नाता ।
नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हें भर कंठ लगाता ।

रंग, राग, रति, रूप, गंध, रस
में वे अंग-अंग डूबे थे,
रुपया आना पाई चिन्तित-
चालित जगती से ऊबे थे,
रोम-रोम उनका प्यासा था
किंतु उदार-मना थे इतने,
सागर सा आदर देते थे जो उन तक था गागर लाता ।
नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हें भर कंठ लगाता ।

तब मेरी साँसों के अंदर
आँधी का पौरुष बल होगा,

तब मेरे आसू की छल-छल
मे लहरों का कल-कल होता,
दुनिया लेकर सूप बनाती
बांध रीति के, नीति-नियम के,
सिंधु-रुपी सावन सरिता सा मैं अबाध बहता उफनाता।
नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हे भर कठ लगाता।

तब गीली-सीली लकड़ी-सी
जल-जल कटती उम्र न मेरी,
जीवन की सारी समिधा की
बांकी एक लगाकर ढेरी
आग उन्हींकी भाति लगा देता,
जब तक जग देखे-देखे,
एक लपट मे भू से उठकर अबर छूकर मैं बुझ जाता।
नर कवि भारतेन्दु गर होते आज, उन्हे भर कठ लगाता।

१६

मथिलो शरण थे हिंदी के हित ग्राए ।
पडी हुई थी एक बालिका
ग्रनचाही, ग्रसहायी,
ग्रल्प वयस की, देख विवश ही
कवि-छाती भर ग्राई,
मिथिलापति मैथिली, कण्व मुनि
शकुतला को जसे,
वैसे ही उसको गोद उठा घर लाए ।
मैथिली शरण थ हिंदी के हित ग्राए ।

तुतलानेवाली को क्रमश
गाना गीत सिखाया,
ग्रौ' घुटनो चलनेवाली को
नर्तन कुशल बनाया,
ग्राजीवन साधना उन्हीकी
ग्राज खटी बोली जो,
युग-देश,प्रकृति,सस्कृति के साज सजाए ।
मैथिली शरण थे हिंदी के हित ग्राए।

फिसे छोडते है जीवन मे
कठिन समय के फरे,

दुर्भाग्य का शाप इसे भी
बहुत दिनों था घेरे,
कटा उन्हीं के तप से, अब यह
भारत-भाषाओं में
पटरानी का अधिकार पूर्ण पद पाए।
मैथिली शरण थे हिंदी के हित आए।

क्या न मिला उनसे, पाने की
जो रखते यह आशा,
जग विख्यात, नहीं होती है
मृषा देव-ऋषि भाषा,
अपना ब्रह्म जगा बस कह दें,
मेरी यह मुंहबोली
मुंहबोली सब जन-भारत की बन जाए।
मैथिली शरण थे हिंदी के हित आए।

२०

सिंहिनी शिशु को देकर जन्म
चल बसी थी जगल मे एक,
उधर से गुज़री कोई भेड,
हुआ उसमे ममता–उद्रेक।

पिलाकर अपने तन का दूध
लिया उसने वह लघु शिशु पाल,
हुआ बढकर वह भेड स्वभाव,
लगा चलने भेडो की चाल।

किसी दिन भेड-झुड के साथ
घूमता था जब सिंह-किशोर,
अचानक आकर गरजा शेर
भगी भेडे सब इस-उस ओर।

और उनके ही साथ, समान
भगा जी लेकर सिंह कुमार,
अत मे एक नदी के तीर
थमा वन खड कई कर पार।

हाफता, डरता कपित-गात
बुझाने के हित अपनी प्यास

झुकाया ज्योंही उसने शीश
हुआ उसको सहसा आभास

अरे ! मैं भी तो सिंह-सपूत,
मुझे यों डरना था बेकार,
और की उसने एक दहाड़
कि जिससे काँप उठा कांतार ।

हुई थी मेरे मन की ठीक
वही हालत, जिस दिन, जिस याम,
निहारा था मैंने निज रूप
तुम्हारे प्याले में, खैयाम !

तुम्हारी मदिरा से जिस रोज
हुए थे सिंचित मेरे प्राण,
उसी दिन मेरे मुख की बात
हुई थी आरतम की तार !

२१

सौगंध खुदी की, मैं आहिस्ता बोलूंगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैताने।
जिन रातों को सारा आलम सोया करता,
उनमें सयमधर, शायर जागा करते है,
जिन देश की रातों मे जगती जगती है,
उनसे वे आंख चुराकर भागा करते है,
जिनमें जगते दिखते थे, उनमें सोते थे,
जिनमे वे रोते-सोते, उनमे जगते है,
सौगंध खुदी की, मैं आहिस्ता बोलूंगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैताने।

सच पूछो तो उनके हिस्से मे कोई भी
थी घडी नहीं ऐसी कि मीर आराम करें,
शायरी चाहती थी कि शाम को सुबह करे,
जिंदगी चाहती थी कि सुबह को शाम करे,
पैरो मे चक्कर था, दिमाग मे चक्कर था,
बेकस, बेबस, बेघर फिरते ही उम्र कटी,
यह एक उम्र का सफर थकाता है कितना!
जो लेटा, उठता नही कि फिर चलना जाने।

सौंगध खुदी की, मै आहिस्ता बोलूगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैंताने ।

है याद सफर जो किया उन्होने दिल्ली से
लखनऊ तलक, हमराही बोला, बात करे,
लेकिन जब उसने बात शुरू की तब बोले,
'मत शोर बोलकर कानो को बर्बाद करे,
है दिया किराया साथ सफर कर सकते है,
लेकिन जबान मेरी क्यो आप खराब करें।'
वे काश कब्र से डाँट पिला सकते उनको
जो शब्द उगलते बे परखे, तोले, छाने।
सौगध खुदी की, मै आहिस्ता बोलूगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैताने।

कब मीर कब्र मे लेट नीद ले सकते है
जब शोर सुखन उनका है चारो ओर मचा,
जिसपर शायर सुख से सोए, सपना देखे,
विधना ने ऐसा बिस्तर अब तक नही रचा,
वह कभी नही मदहोशो मे, मयख्वारो मे,
वह देश-जाति-भाषा के पहरेदारो मे,
कोई न खडी बोली लिखना आरभ करे
अदाज मीर का बे जाने, बे पहचाने।
सौगध खुदी की, मैं आहिस्ता बोलूगा,
कहने दो कुछ टुक बैठ मीर के पैताने।

२२

गालिब, वह गलबा ला दो मेरे जीवन मे
जिससे मेरा अदाजेबया कुछ और बन!

क्या शेर तुम्हारे मुझको ऐसे लगते हैं
जैसे घोले हो जीवन की सच्चाई मे,
जैसे बोले हो वे प्राणो की भाषा म
जो नही पडा करती है हाथापाई म
सिद्धात, विचार, विवादो, वादो, नारो की,
जो पेशेवर अखबारनवीस कराते हैं?
गालिब, वह गलबा ला दो मेरे जीवन में
जिससे मेरा अदाजेबया कुछ और बने!

मै ने तुमको है पढा नही मुर्दा जिल्दो
मे वठ वल्ब के नीचे काली रातो म,
मैने तुमको है सुना जिंदगी के मुँह से
मन के सौ आघातो मे, प्रत्याघातो मे,
शब्दो से मैने राज तुम्हारा कब पूछा?
पूछा है मैने दिल्ली से, मेहरौली से,
जिसकी सडको के ऊपर तुम भटके-भूले,
जिसकी गलियो के तुमने फिर-फिर मोड गिने।

गालिब, वह गलवा ला दो मेरे जीवन मे
जिससे मेरा अदाजेबयाँ कुछ और बने !

शायर के दिल मे इकलाव जब आता है,
उसकी चर्चा कब होती छापेखानो मे,
पर भावो का सैलाब उठा करता है जब
महदूद नही वह रहता है दीवानो मे,
उन सब कविताओ को मै मरी समझता हूँ
एरियल कान का जिनको नही पकडता है,
रेडियो जबा का जिन्हे नही फैलाता है,
उनका हर अक्षर कृमि-कीटो का कौर बने
गालिब, वह गलवा ला दो मेरे जीवन मे
जिससे मेरा अदाजेबया कुछ और बने !

दिल्ली आया हूँ, उठता आज सवाल नही,
हम दिल्ली मे तो रहे मगर खाएँगे क्या,
नेहरू की दिल्ली का यह सबसे बडा प्रश्न,
हम दिल्ली मे तो रहे मगर गाएँगे क्या,
जो कौम नही गाती है वह मिट जाती है,
लेकिन यह कैसे सभव हो गाएँ नेहरू
की दिल्ली मे, गाएँ गालिब की दिल्ली मे,
कैसे दुनिया का यह जादूई दौर बने।
गालिब, वह गलवा ला दो मेरे जीवन मे
जिससे मेरा अदाजेबयाँ कुछ और बने !

२३

मुल्क मे, इकबाल, जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर-फिर निकलती।
जो हृदय को चीरकर आवाज उठती,
वह हृदय को चीरकर अंदर समाती,
और जो अंदर समाती, साँस बनती,
प्राण बनती, रक्त बनती, कसमसाती,
यह बदलता काल कविता का अमर स्वर
गाल मे रखकर कुचल सकता नही है।
मुल्क मे, इकबाल, जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर-फिर निकलती।

सरस पथ पर, शुष्क पथ पर, शून्य पथ पर
तुम चले, ऐसा सफर था जिंदगी का,
और जिस पथ पर चलें, गाते चलेंगे
सैनिकों का, शायरों का है तरीका,
शुष्क पथ के गीत गढते रूढियों को,
शून्य पथ के, मूढ, बूढो के लिए हैं,
पर सरस ध्वनियाँ तुम्हारी हैं जवानों के कलेजो में मचलती।
मुल्क मे, इकबाल, जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर फिर निकलती।

जिस समय मेरी जवानी ने दिलो की
वात सुनने की गरज से कान खोले,
प्रौढ स्वर मे उस समय टैगोर वोले
पूव से, पच्छिम तरफ इकबाल वोले
　　　　　　　　और मुझको यह लगा जैसे प्रकृति औ'
　　　　　　　　पुरुष मिलकर प्रेम-कोरस छेड बैठे,
और जो मैं गुनगुनाया, वस उन्हीको गूँज की कुछ-कुछ नकल थी।
मुल्क मे, इकबाल, जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर-फिर निकलती।

हा, सुना मैंने कि वह हिंदोस्ताँ का
गान पाकिस्तान मे गाना मना है,
किंतु वह भी था तुम्हारा हिंद जो
दौरेजमा से टूट पाकिस्ताँ वना है,
　　　　　　　　जो कलामो से तुम्हारे खेल करना
　　　　　　　　चाहते है, बात इतनी सी समझ ले,—
देश की सीमा बदलती है, नही, पर, पक्ति शायर की बदलती।
मुल्क म, इकवाल,जो तुम भर गए थे, वह सदा फिर-फिर निकलती।

२४

भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया ग्रौर गाया।

जातियाँ जाती पतन की ग्रोर को जब
कंठ पहले वे गँवाती,
ग्रौर जब उत्थान को ग्रभियान करती
तब प्रथम आवाज़ ग्राती,
पूर्व से पच्छिम तलक, गुरुदेव, गूँजा
नाद जो, वह था तुम्हारा,

भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया ग्रौर गाया।

एक ग्राश्रम छोड, ग्राए चीरते तुम
काल का घनतम ग्ररण्यक,
ग्रौर तुमने तोड फेंका यामिनी का
जाल जादू का यकायक,
जोड दी बीते युगों की शृंखलाएं
साथ, जो टूटी पडी थीं,

दिव्य भारत भूमि के ग्रमरत्व का स्वर विश्व को तुमने सुनाया।
भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया ग्रौर गाया।

है मुझे दावा, समझता हूँ गगन की
तारिका जो बात कहती,
जो अधर में मग चहकते, और गाती
जो नदी की धार बहती,
शब्द-अर्थों की परिधि को पारकर जो
घूमती है ध्वनि तुम्हारी,
प्रध्वनित मैंने उसे कितने क्षणों में है हृदय के बीच पाया।
भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया और गाया।

बीज मैं उनको कहूँगा जो उगाएँ
पेड फिर से बीज वाले,
दीप मैं उनको कहूँगा जो कि अपनी
आग से फिर दीप वाले,
वह लहर है जो लहर को जन्म देती,
और आगे को बढाती,
है मुझे विश्वास, तुमने ही मुझे है आज ऊपर को उठाया।
भारती की सुप्त वीणा को तुम्हीने फिर जगाया और गाया।

२५*

मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।
याद करूँगा सबसे पहले
मैं तो यह वरदान तुम्हारा—
तुमने 'गीताजलि' के भावो
को अग्रेजी मे अवतारा।
चतुर कीमियागर, चादी की
प्रतिमा जो गुरुदेव-रची थी,
उसको लेकर तुमने उसपर फेर दिया सोने का पानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

कठ तुम्हारा फूटा था जब
गिरा हो रही थी जर्जर स्वर,
कला कला के हेतु हुई थी
जन-मन सघर्षों से बचकर,
भूपा वेश विचित्र किए कवि
अपनी छाया पिछुआते थे।

* इस गीत पर एक टिप्पणी पुस्तक के अत में दी गई है।

अपने मूक देश को मुखरित करने की तुमने, पर, ठानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

आज़ादी के जद्दोजहद मे
जूझ रहे थे जब दीवाने,
लगे हुए थे तुम लिखने मे
नाटक, गल्प, निबंध, तराने,
गाने जिनके शब्द-शब्द से
रूह बोलती थी आयर की,
आयर का इतिहास, पुरा विश्वास कल्पना-कर्म कहानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

स्वप्न ढकी दुनिया से लेकर
नंगी दुनिया की सच्चाई
तक जो भी तुमने अपनाई
निर्भय, निर्लज्जा अपनाई,
और सुनाए मीठे-कड़ुए
अनुभव सब जीती भाषा में
जिनको जग, जीवन, युग से डर, मरी हुई है उनकी वाणी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

वाणी व्रत नही अपने मे,
है यदि समझ, उसके द्वारा

तुमने आयर के यौवन का
एक नया ही पक्ष उभारा,
जो कि सृष्टि की सुन्दरता पर
तितली सा फिर-फिर मँडलाए
किन्तु सत्य की ओर बाज़ की भाँति बढ़े वे आनावानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

कवि का पथ अनत सप सा
जो मुख मे है पूँछ दबाए,
और मनीषी तीर सरीखी
सीधी अपनी लीक बनाए,
उनकी दृष्टि दिशा म कितना
अतर है, पर तुमने चाहा,
जो दोना को साथ समोए, बनना सिद्ध सधा वह प्राणी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

काव्य सिन्धु म उतर तुम्हारे
मैंने तह को खूब थहाया,
मोती जो दो-चार निकाले,
यह माँझी का फज बजाया,
इनको जग परखे, मेरा तो
सुख सबसे बढकर था, उसकी
चिर-चचल, वर्तुल लहरो से क्रीडा की, विलसा, मनमानी।
मै नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।

मुझे शुरू से ही लगता था
आकर्षक व्यक्तित्व तुम्हारा,
अलग सबों से प्रकट प्रवाही
थी तुमने अपनी ध्वनि-धारा,
मैं गाऊँ तो मेरा कंठ—
स्वर न दबे औरों के स्वर से
जीऊँ तो मेरे जीवन की औरों में हो अलग रवानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, अग्यर के शायर अभिमानी।

२६

ओ साँची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।
दो सहस्र वर्षों के पहले
महाकाव्य जो पाषाणों में
तुमने लिखा, उसे पढ़ पाना
था मेरे उन अरमानों में
जिनके पूरा हुए बिना मैं
अपना जन्म अधूरा कहता,
ओ साँची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।

काल, प्रकृति, दानव, मानव के
दुसह कराघातों को सहते,
ऊँचा अपना भाल उठाए
अपनी पुण्य कथा तुम कहते,
अनहद नाद तुम्हारा सुनकर—
सुना, अनसुना भी बहुतों को—
कोई कह सकता है उसने बात सुनी गंभीर गगन की।
ओ साँची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।

कहा गए औज़ार कि जिनसे
तुमने ये रेखाएँ आकी,
कहा यत्र-कल रची जिन्होने
कुशल तुम्हारी छेनी-टाकी,
कहाँ गए वे साचे जिनमे
ये नैसर्गिक रूप ढले थे,
ये जिज्ञासाएँ सदियो तक बनी रहेगी विषय मनन की।
ओ साची के शिल्प साधको, बनो प्रेरणा मेरे मन की।

कला नही बसती पत्थर मे,
स्वर म, रगो की श्रेणी मे,
वाजतर म, कठ, लेखनी
मे, तूली, कीली, छेनी मे,
कोई मदर जब जन-अतर
मथन करता, स्वप्न उघरते,
कला उभरती, कविता उठती,
कीर्ति निखरती, विभव बिखरते,
मैंने भी देखी ह ऐसी एक बडी हलचल जीवन की।
ओ साची के शिल्प साधको, बनो पेरणा मेरे मन की।

२७

ओ अजंता की गुफाओं के अनामी,
यश-अकामी चित्रकारो !

चार मुर्दा शब्द की माला बनाकर
मैं अमरता को पिन्हाना चाहता हूँ,
और यह हास्यास्पद खिलवाड़ करने
के लिए मैं नाम पाना चाहता हूँ,
तुम अमरता की लकीरें खींच उनके
बीच अन्तर्धान कैसे हो गए हो !
ओ अजंता की गुफाओं के अनामी,
यश-अकामी चित्रकारो !

मैं तुम्हारी जाति का हूँ, देश का हूँ,
पर तुम्हारे काल औ', मेरे समय में
फ़ासला जो पड़ गया, किस भाँति उसने
कर दिया है फ़र्क मस्तिष्को-हृदय में !
क्या कला है ? क्या कलाकृति ? क्या कलाधर ?
औ' कला का किसलिए अवतार होता ?

आज इन पर वाद और विवाद बहुधा,
तुम न, मर्मी, मौन धारो।
ओ अजंता की गुफाओं के अनामी,
यश अकामी चित्रकारो!

काम जिनका बोलता है वे कभी भी,
वे किसीसे भी नहीं कुछ बोलते हैं,
और हम जो बोलने का काम करते
शोर करके पोल अपनी खोलते हैं,
जीभ अपनी, आंख अपनी, सांस अपनी
और अपना प्राण-जीवन जो तुम्हें दे—
कर गए, उनकी बताओ मान्यताएँ,
चारु चित्रों की कतारो!
ओ अजंता की गुफाओं के अनामी,
यश-अकामी चित्रकारो!

इस जगह सिद्धार्थ घर को त्याग अपने
रत्न-आभूषण बदन से दूर करते,
इस जगह पर कामिनी के कर कलामय
उँगलियों से उस कमी को पूर्ण करते,
जो प्रकृति ने छोड़ दी है नारि अंगों
पर, प्रसाधन और शत मुक्ताभरण से,
कौन सामंजस्य रखता बीच, लौकिक
और नैसर्गिक नजारो!

ओ अजता की गुफाओ के अनामी,
यश अकामी चित्रकारो !

इस जगह अमिताभ जग-पीडित जनो पर
शातिकर शीतल सुधा धारा बहाते,
इस जगह यौवन सुरा मे मत्त नायक
रमणिया को प्रेम की मदिरा पिलाते,
गोद मे बैठालकर, भुजपाश मे भर।
राग और विराग जैसे मिल रहे है
इस गुहा मे, उस तरह मुझमे मिलाकर
पक्तिया मेरी सँवारो।
ओ अजता की गुफाओ के अनामी,
यश-अकामी चित्रकारो !

स्वप्न जीवन का, कला है, जोकि जीवन
मे, निखरकर वह कला से झाकता है,
यह महज दपण नही है, दीप भी है
जो अमरता के शिखर को आकता है,
औ' कलाधर को सतत सकेत करता,
बधनो मे जो न बँधता वह बढाता
पाव उसकी ओर। ओ, गिरि-शृग के
आरोहियो, मुझको पुकारो।
ओ अजता की गुफाओ के अनामी,
यश अकामी चित्रकारो !

२८

खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला मे गान तुम्हारा।
पवत पर पद रखने वाला
मैं अपने कद का अभिमानी,
मगर तुम्हारी कृति के आगे
मैं ठिंगना, बौना, बे-बानी,
बुत बनकर निस्तेज खडा हूँ।
गुजारित हर एक दिशा से,
खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला म गान तुम्हारा।

धधक रही थी कौन तुम्हारी
चौडी छाती मे वह ज्वाला,
जिससे ठोस-कडे पत्थर को
मोम गला तुमने कर डाला,
और दिए आकार, किया शृगार,
नीति जिनपर चुप साधे,
किंतु बोलता खुलकर जिनसे शक्ति-सुरुचिमय प्राण तुम्हारा।
खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला मे गान तुम्हारा।

एक लपट उस ज्वाला की जो
मेरे अतर मे उठ पाती,
तो मेरी भी दग्ध गिरा कुछ
अगारो के गीत सुनाती,
जिनसे ठडे हो बैठे दिन
गर्माते, गलते, अपने को
कब कर पाऊँगा अधिकारी, पाने का, वरदान तुम्हारा।
खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला म गान तुम्हारा।

मैं जीवित हूँ, मेरे अदर
जीवन की उद्दाम पिपासा,
जड मुर्दो के हेतु नही है
मेरे मन म मोह जरा सा,
पर उस युग म होता जिसमे
ली तुमने छेनी-टाकी तो
एक मागता वर विधि से, कर दे मुझको पाषाण तुम्हारा।
खजुराहो के निडर कलाधर, अमर शिला मे नाम तुम्हारा।

२६

भुवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !
माना मैंने पलक उठाकर
देख नही मुझको पाओगी,
किंतु न था विश्वास कि मेरी
बोली को भी बिसराओगी,
भोली, अपने निर्माता को
ऐसे भूल नही जाते हैं,
क्या कहलाओगी फिर मुझसे पूर्व जन्म की पूर्ण कहानी ?
भुवनेश्वर की प्रणय पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

जाना था तुम फिर न मिलोगी
पर आशा थी लिखकर पाती,
कभी बताओगी, पूछोगी,
क्या कहती,क्या सहती छाती,
एक तुम्हारा रूप रात-दिन
आखोमे नाचा करता था—
वह कही तुम नीरव रेखा के अंदर भरती हो वाणी।
भुवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

पर न कभी जब पाती आई
तब वह कल्पित रूप तुम्हारा
मैंने मन को दृढ करने को
एक शिला को काट निखारा—
हाथ रुका है, कलम थमा है,
रमे हुए हैं दृग चिंतन में,
कौन हृदय का भाव कि जिनके जोग शब्द की खोज, सयानी ?
भुवनेश्वर की प्रणय पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

क्या न मिलेगा, और अधूरी
पाती पूरी हो न सकेगी ?
जन्म जन्म क्या उसको पाने
को मेरी आशा तड़पेगी ?
काश कलाधर तुम भी होती
और प्रतीक्षाकुलता मेरी
एक अटल पत्थर के अंदर मूर्तिमती करती, कल्याणी !
भुवनेश्वर की प्रणय पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

३०

ललित कांगडा कलम कलित के रसिक-सुजान चलाने वालो !
देख तुम्हारी रेखाओ मे
जो चिकनाहट, चटक, सफाई,
घेर, घुमाव, कमाव, ढलावट,
लोच, लटक, वल, मोड, निकाई,
सोच नही पाता हूँ कितनी
महलाई होगी जीवन की
काया तुमने, भर हाथो म प्यार, कला के नाम निहालो !
ललित कागडा कलम कलित के रसिक-सुजान चलाने वालो !

अपनी मर्मस्पर्शी तूली
से तुमने जो रूप निखारे,
वे मेरे नयनो मे झूमे,
घूमे कितने साभ सकारे,
उनकी करता खोज फिरा हूँ
कितनी रातो, कितनो राहो
पर ऊँची, नीची, पथरीली, तुम बतलाओ, पग के छालो !
ललित कांगडा कलम कलित के रसिक सुजान चलाने वालो !

फलक-रग ये पराक समात
तो भी भाव-तरग उठाते,
पर ये पहुँच निकट श्रवणो के
योवन का आख्यान सुनाते,

मेरी पक्ति पक्ति मे गुफित
हो ऐसा ही एक फसाना,

मैं तुमसे सीखू, समझू कुछ, मुझको अपने बीच विठा लो।
ललित कांगडा कलम कलित के रसिक-सुजान चलाने वालो !

जीवन क्या है ? और कला क्या ?
क्या युग का मन मयन करता ?—
ऐसा वत कहा जो तीनो
को अपनी बाहो म भरता,

मैं इसको अकित करने म
असफल ही होता आया हूँ,

मेरा अथिर, अनिश्चित, कपित हाथ पकड कर आज संभालो।
ललित कांगडा कलम कलित के रसिक सुजान चलाने वालो !

३१

आज कागडा की घाटी का राग बसे छाती मे।
अनजानी सदियो से जिसके
जिंदादिल नर नारी
ज्वाला देवी के आराधक
साधक, भक्त, पुजारी—
जो जिसके मन डोला करता
मुख से बोला करता—
आज कागडा की घाटी का राग बसे छाती मे।

औ' बहता है व्यास जहा ले
शत शत निर्झर नाले,
करते बात, उसासे भरते,
गाते गीत निराले,
गर्जन करते पाषाणो पर
जो उनका पथ रोके,
लडते तट, मिलते पनघट से निज गति मदमाती म।
आज कांगडा की घाटी का राग बसे छाती मे।

जिनकी यति मे आग, और है
जिनकी गति मे पानी,
वही जानते ललक जिंदगी
क्या है, वलक, जवानी।
उनके बीच बसा मैं कुछ दिन
उनकी रति मति जानी,
उनका स्नेह कही सचित है मेरी मन वाती मे।
आज कागडा की घाटी का राग बसे छाती म।

जो गाती हो, उनकी होगी
कैसी आशा-निराशा,
कैसी प्यार, मरण, जीवन की
क्रान्तिकरी परिभापा—
'चद्दर फटे ता लाई लैणी टल्ली,
अवर फटे किया सीना,
खसम मरे हो जादा गुजारा,
यार मरे किया जीना!'
भाग कभी क्या होगा मेरा भी उनकी थाती मे।
आज कागडा की घाटी का राग बसे छाती मे।

३२

जब व्यास उसासें भरता था,
मै कैसे जाकर सो जाता।

पापाणो की दीवार उधर,
पापाणो की दीवार इधर,
अबर की छाजन से लटके
तारो के दीपक तितर-बितर,
पत्थर के निर्मम बिस्तर पर
करवट पर करवट बदल-बदल
जब व्यास उसासें भरता था,
मै कैसे जाकर सो जाता।

कुल्लू की घाटी मे जीवन
दिन ढलते ही ढल जाता है,
इक्का-दुक्का आता-जाता
डरता है और डराता है,
पर्वत की रूह अँधेरे मे
जैसे विचरण को निकली हो,

कोई गाता तो स्वर उसका
जल के स्वर में लय हो जाता।
जब व्याम उसासे भरता था,
मैं कैसे जाकर सो जाता!

मैंने अपने को समझाया,
यह सिर्फ नदी का पानी है,
यह खामखयाली है इसके
पीछे कुछ प्रेम कहानी है,
ऊपर से नीचे बहता है,
क्या सहता है, क्या कहता है,
कवि देख नजारे ऐसे ही
अपने ख्वाबों में खो जाता।
जब व्यास उसासे भरता था,
मैं कैसे जाकर सो जाता!

मगर जब चोटी पर पहुँचा
तब देखा 'जोनी' आती है,
जो बात यहाँ दी जाती है,
निश्चय पूरी की जाती है,
अब मौन मुझे धारा लगती,
अब मौन किनारा लगता है,
ऊपर तारे, मेरे सिर के
नीचे 'जोनी' की छाती है,

जिसके अन्दर मुझको लगता
सौ व्यास उसासें भरते हैं,
जो व्याकुल मन थिर करते हैं,
मैं, काश कि, अपने गीतो मे
कुछ ऐसे अर्थ समो पाता!
जब व्यास उसासें भरता था,
मैं कैसे जाकर सो जाता!

३३

मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाव गदर का गोला।

सीख चुका हूँ अब मैं दोनो,
घायल करना, घायल होना,
बालपने मे चोटें खाकर
जब कि शुरु करता था रोना—

धोना, झुकी कमर के बूढे
कुछ तनकर यह बतलाते थे,

तुम हो उनके पौत्र, पडा था जिनके पाव गदर का गोला।

सुना फिरगी फौजें आती,
लेकर तेग जगत पर बैठे,
बाधे हुए कमर मे फेटा
सिर पर पगडी, मूँछें ऐंठे,

हुक्म जनाने मे पहुँचाया—
कूद कुएँ मे जायें धमाधम,

गोरी टुकडी ने आकर यदि इस बखरी पर हमला बोला।
मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाव गदर का गोला।

एक सन्न से गोला आया,
तेग कुएँ के बीच बहाई,

'छिपकर वार फिरगी करता,
कौन करे नामर्द लडाई।'
खीच डोल से पानी गोला
ठडा करके घर ले आए,
मेरे बचपन म उससे घी, शाक, दही जाता था तोला।
मै हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाँव गदर का गोला।

फिर न छुई तलवार कभी भी,
बने कलम के सिफ पुजारी,
पढी लडकपन मे थी मैंने
लिखी उन्हीकी खालिकवारी,
पुस्खत मे लिख निरख रक्खी थी
कितनी ही नायाब किताबे,
चकित देखता था मैं उनका बस्ता जब जाता था खोला।
' मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाँव गदर का गोला।

सन-से बालो, झुर्री वाले
गालो वाली बुढिये आकर,
देख मुझे छुटपन मे कहती
थी, तुम हो अपने आजा पर।
मैंने देखा नही उन्हे था,
केवल इतना सुन रक्खा था,
कडे कलेजे वाले थे वे, लोग उन्हे कहते थे भोला।
मैं हूँ उनका पौत्र, पडा था जिनके पाव गदर का गोला।

३४

बाबा के सँग दादी की भी याद जगाना समुचित होगा।

था उनका अरमान काल जब
उन्हे जगत से लेने आए,
मांस धरा उनकी थाली मे,
औ' गिलास मे मदिरा पाए!

बदल गए लहजे बातो के,
मुझको पडता अर्थ बताना,
मतलब था, वे चाह रही थी,
बाबा के आगे मर जाना!

तब के जग-समाज म विधवा,
नही सुहागिन, को ये वर्जित
थे, लेकिन भगवान भाग्य म
और कर चुके थे कुछ अकित।

बाबा के सँग दादी की भी याद जगाना समुचित होगा।

पिता-पुत्र आ रहे कही थे,
आंधी पानी, पत्थर आया,

बेटे को छाती से ढककर
पुत्र प्रेम का मूल्य चुकाया

बाबा ने अपने प्राणों से,
घर मे पैसे की थी तगी,
घर को बेच काम कर डालो,
समझाने आए बजरगी।

दादी बोली, बेच आज घर
उनका काम करा तो दूगी,
किंतु मुझे कल रोना होगा
तब किसकी ड्योढी ढूढंगी ?

हिंदू विधवा की किस्मत पर कौन नहीं जो कपित होगा।
बाबा के सँग दादी की भी याद जगाना समुचित होगा।

नाते रिश्तेदारो ने भी
उनका बहुत विरोध किया था,
पर मेरी दादी ने जो कुछ
सोच लिया था,सोच लिया था,

बाबा लौह-पुरुष थे, भावो
मे, पर, वह जाते थे अक्सर,
दादी कोमल थी पर आखे
दृढ रखती थी वस्तुस्थिति पर।
एक दूसरे के पूरक थे
जीवन मे थे सुखी इसीसे,

सुनी प्रशसा केवल उनकी,
सुनी जहाँ, जब और जिसी से।

हृदय और मस्तिष्क उन्हीका
मुखरित हो मेरे छदो मे,
यदि मुझको जिंदा बन रहना
है हिंदी के तुकबदो मे,
मेरे रक्त नसो के अदर उनका क्या कुछ सचित होगा!
बाबा के सँग दादी की भी याद जगाना समुचित होगा।

३५

ललितपूर को नमस्कार है जहाँ पिता जन्मे थे मेरे।
मेरे तन मे ललितपूर का
कोई कण डोला करता है,
और कही पर मेरे स्वर मे
उसका स्वर बोला करता है,
मिट्टी इतनी दीन नही है
जितनी कवि की आह् बताती,
सात पीढियो तक यह मिट्टी
अपना असर दिखाती जाती,
इसीलिए तो आज कि जब मैं
अपने पूरेपन को वाणी
देने का कर यत्न चला हूँ,
याद मुझे आई अनजानी,
ललितपूर को नमस्कार है जहा पिता जन्मे थे मेरे।

सुना, जैल के दारोगा बन
मेरे बाबा वहा गए थे,
मेल-जोल हो गया सभी से
जल्दी, गो वे नए-नए थे,

थोडे दिन के बाद नौकरी
जबकि हो गई उनकी पक्की,
दादी पहुँची बाधे बगचा,
बतन, चर्खा, चूल्हा, चक्की।

वही पिता जी हुए, वही का
अपना मधुर लडकपन जाना,
पर प्रयाग मे, ललितपूर मे
अक्सर होता जाना आना,

शिकरम के दिलचस्प सफर थे याद पिता जी को बहुतेरे।
ललितपूर को नमस्कार है जहाँ पिता जन्मे थे मेरे।

सुनी उन्हीसे थी मैंने यह
जुडी जन्म के साथ कहानी,
उसी राह म, किसी जगह पर
एक तीथ है भुइया रानी,

पूजा करते समय वही पर
वाम अग दादी का फरका,
मन्नत मानी सात चुनर की
जो घर मे खेलेगा लडका।
आते-जाते हठकर दादी
भुइया रानी को जाती थी,
औ' हर बार वहाँ देवी को
पीली चुनरी पहनाती थी।

मुइयाँ रानी! —नाम सोचकर
मैं विभोर अब हो जाता हूँ,
नामकरण करने वाले की
रुचि,रस को किस भाँति सराहूँ!
मुझे कभी जाकर करने हैं उस कवित्वमय थल के फेरे।
ललितपुर को नमस्कार है जहा पिता जन्मे थे मेरे।

३६

हर खुशी मे, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।
घूम आधा विश्व, आधी ज़िदगी को
पारकर यह सत्य जाना
श्रेष्ठ दुनिया मे नही इसके सिवा कुछ
प्यार करना, गीत गाना,
आज वाणी सग मे है, दिल भरा है
औ' तुम्हारा चित्र आगे,
हर खुशी मे, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

क्योकि दोनो काम उसका है कि जिसके
पास केहरि का हिया हो,
सास ने नापा न जिसको, साथ जिसका
झड-बवडर ने किया हो,
सिह के ही कठ से आवाज़ उठती
है कि जगल गूँजता है,
कोकिलाएँ कूकती, वुलवुल चहकते और भौंरे मिनमिनाते।
हर खुशी मे, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

हर्फ तख्तो पर लिखे थे जबकि लाँबे,
तुम कही मन मे बसे थे,
मास्टर जी कुछ न समझे भेद इसका,
देखकर कितना हँसे थे !
यत्न मेरा अब कि मेरे लफ्ज मे हो
कद तुम्हारा, तुम समझते
थे फलेंगे, जो कि अपनी अक्ल अपनी नस्ल की ताकत बढाते।
हर खुशी म, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

था सजल समझा कभी तुमने मुझे या
भावनाओ मे वहे थे,
याद है वे शब्द मुझको जो कि तुमने
मृत्यु-शैया पर कहे थे—
मै बडा सौभाग्यशाली उस पिता को
और उस मां को समझता
हू कि जिसके पूत के मजबूत–पाएदार काधे लाश उसकी हैं उठाते।
हर खुशी मे, हर मुसीबत मे मुझे, हे पूज्य, तुम हो याद आते।

३७

हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

घटना और परिस्थितियो से
दहका करके आग-अँगारा,
इम्तहान मेरा लेने को
जब-जब दुनिया ने ललकारा,
पूज्य पिता के फौलादीपन
की तब मन को याद दिलाई—
हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

एक बार था मचा शहर मे
हिंदू-मुसल्मान का दगा,
हुआ हमारे घर के आगे
दो तुर्कों का वध बेढगा,
चपत हुए मारनेवाले,
लेकिन गए पिता जी पकडे
औ' दस-पाच पडोसी—शकर, सुद्धन, मगल, भीख, भवानी।
हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

हाहाकार मचाया सबने
हाय राम, क्या होने वाला,

किसको किसको फाँसी होगी,
किसको किसको पानी काला,
रोना-धोना औ' चिल्लाना
काम यही था भर दिन सबका,
देख-देख कादरपन उनका हुई पिता जी को हैरानी।
हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

बोले, मेरे लाल सयाने,
बुढिया मेरी हरि-विश्वासी,
मैं कह दूँगा तुक बधे है
मैंने, मुझको दे दो फाँसी,
नही किसीका घर उजडेगा,
एक मुझे है मरना जीना,
जाकर पूछ किसीसे लेना कटघर मे मशहूर कहानी।
हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

अद्वितीय कितनी ही बाते
उनकी याद मुझे हैं आती,
कुछ मैंने खुद ही देखी थी,
कुछ अम्मा जी थी बतलाती,
सबमे हिम्मत और कडकपन
या फिर दरिया दिली गजब की,
और लगूगा कहने तो फिर होगा यह किस्सा तूलानी।
हूँ उनकी औलाद जिन्होने जीवन मे थी भीति न जानी।

३८

जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी ।
सूर्य की आँखो तले अभिमान जिसने
भी, जहा, जिस दोप-गुण का, जब किया है,
यह वही साबित हुआ, जिसको कि उसने
एक माँ के दूध से पाया, पिया है,
भाग्य मे जिसके लिखा हो कवि बने वह,
तो उसे जो माँ मिले, हो तुम सरीखी,
जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी ।

याद आते हैं लडकपन के सबेरे,
मुँह-अँधेरे जबकि राधे-श्याम कहकर,
तुम उठी हो दे बुहारी, धो-नहाकर
ध्यान-पूजा से निवट गृह-काज-तत्पर
हो गई हो, हाथ धधो मे लगा है,
कठ मीरा, सूर, तुलसी के भजन मे,
और बिस्तर मे रजाई से लिपटकर
आख मूदे सुन रहा हूँ मैं प्रमादी ।

जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी।

और सुदर काड कितने मगलो को
था सुना मुँह से तुम्हारे, याद आता—
कौन शुभ किस रास्ते से आ निकलता
है नही इसान इसको जान पाता—
उस समय चुप, मष्ट मारे बैठने का
एक ही था सामने मेरे प्रलोभन,
पाठ का जब अत होता था मगद के
लड्डुओ की थी मिला करती प्रसादी।
जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी।

और कितनी बार घुटनो मे तुम्हारे,
जबकि घर मे गीत का त्योहार होता
था, मजीरो, ढोल, ताशो की गमक मे,
बैठकर लय, ताल, सुर था मैं सँजोता,
और मेरे झूमने पर जबकि तुमने
पीठ मेरी थपथपाई थी लगा था—
'सुरसती' ने मूक मृत पाषाण छूकर
राग भरती आग जैसे हो जगा दी।
जीभ को तुमने सिखाया बोलना औ'
गीत की लय कान मे तुमने बसा दी।

३६

याद आते हो मुझे तुम, ओ, लडकपन के सवेरो के भिखारी !
तुम भजन गाते, अँधेरे को भगाते
रास्ते से थे गुजरते,
औ' तुम्हारे एक तारे या सरगी
के मधुर सुर थे उतरते
कान मे, फिर प्राण मे, फिर व्यापते थे
देह की अनगिन शिरा मे,
याद आते हो मुझे तुम, ओ, लडकपन के सवेरो के भिखारी !

औ' सरगी-साधु से मै पूछता था,
क्या इसे तुम हो खिलाते ?
'ई हमार करेज खाथै, मोर बचवा,'
खाँसकर वे थे बताते,
और मैं मारे हँसी के लोटता था,
सोचकर उठता सिहर अब,
तब न थी सगीत कविता से, कला से, प्रीति से मेरी चिन्हारी ।
याद आते हो मुझे तुम, ओ, लडकपन के सवेरो के भिखारी !

बठ जाते ओ' सुनाते गीत गोपी–
चद, राजा भरथरी का,
राम का वनवास, ब्रज की रास लीला,
ब्याह शकर-शकरी का,
ओ' तुम्हारी धुन पकडकर कल्पना के
लोक मे मै घूमता था,
सोचता था, मैं बडा होकर बनूगा बस इसी पथ का पुजारी।
याद आते हो मुझे तुम, ओ, लडकपन के सबेरो के भिखारी।

खोल झोली एक चुटकी दाल-आटा
दान मे तुमने लिया था,
क्या तुम्हे मालूम जो वरदान तुमने
गान का मुझको दिया था,
लय तुम्हारी, स्वर तुम्हारे, शब्द मेरी
पक्ति मे गूजा किए है,
और खाली हो चुकी, सड गल चुकी वे झोलिया कब की तुम्हारी।
याद आते हो मुझे तुम, ओ, लडकपन के सबेरो के भिखारी।

४०

हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बांह मेरी।
था कहा तुमने कि, बीती को भुलाना,
आंख से आंसू बहाते,
वे अलग होते नहीं जो एक मां की
कोख से हैं जन्म पाते,
हम लडे पर वक्त पडने पर हमेशा
साथ हम थे, एक हम थे,
हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बांह मेरी।

उम्र कच्ची थी, गृहस्थी और कच्ची,
था अभी तुमको न मरना,
मैं बडा था और तुमसे पूर्व मुझको
था जगत से कूच करना,
खेलता आया सदा था जिंदगी की
आग से मैं इस भरोसे—
तुम खडे पीछे, गए जब तो गए ले आखिरी तुम छांह मेरी।
हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बांह मेरी।

जबकि मैने देश-दुनिया भूल कविता-
कामिनी का मर्ज़ पाला,
तब पसीने की कमाई से तुम्हीने
था समूचा घर सँभाला,
राग-रस पकते तभी है जबकि फ़ुरसत
से उन्हें कोई पकाए,
कर मुझे बेफ़िक्र तुमने ही सरल औ' साफ की थी राह मेरी।
हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बाह मेरी।

चार बहनों-भाइयों के बीच केवल
एक मै बाकी बचा हूँ,
काल का उद्देश्य कोई पूर्ण करने
को गया शायद रचा हूँ,
और क्या आता मुझे है, सिर्फ इसको
छोड—तुक से तुक मिलाना,
है अभी मुखरित कहा हर एक सुख की साँस, दुख की आह मेरी।
हाय, शालिग्राम, तुम भाई न थे, तुम दाहिनी थे बाह मेरी।

४१

राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।
आठ बरस का था मैं, दिन थे
वर्षा के, थी रात अँधेरी,
काले, फूले, फैले मेघों
ने थी चार दिशाएँ घेरी,
रह-रह दामिनि दमक रही थी,
कड़क रही थी, याद मुझे है,
राह कल्पना की तब तुमने सबसे पहले थी दिखलाई।

'बोलो दादी, यह गड-गड़ का
शोर कहाँ से नीचे आता?'
'इन्द्र हुआ असवार-अश्व पर
बादल पर उसको दौड़ाता,
नालों से जो फूट कभी है
पड़ती चिन्गारी, वह बिजली,
गर्जन है, टापों के पड़ने से देते जो शब्द सुनाई।'
राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।

विद्युत गति से चलनेवाला
होगा कैसा अद्भुत घोड़ा,

उस पर वश रख सकने वाला
होगा कैसा कर्कश कोड़ा!
हृदय-सिंधु से मेरे उस दिन
उच्च थवा निकल भागा था,
तीन लोक, तीनों कालों में पैठ सहज थी उसने पाई।
राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।

निज इच्छा वह आता, मुझको,
जहाँ चाहता, जब, ले जाता,
उसकी गति-विधि, मति-मंशा का
पता नहीं मैं कुछ भी पाता,
कभी मुझे, धरती ही पर जो
चरते, उनसे ईर्ष्या होती,
और कभी वे बंदे मुझको देते हैं दयनीय दिखाई।
राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।

स्वर्ग लोक से बोलो—कैसे
इस पर जीन-लगाम चढ़ाऊँ,
इस मुँहज़ोर तुरग को कैसे
जाँघों में कस बस में लाऊँ,
कलाकार वह बड़ा, कला पर
अपनी, जो हावी होता है,
अब दुनिया कहती है अपनी चालों का मैं उत्तरदायी।
राह कल्पना की तुमने ही सबसे पहले थी दिखलाई।

४२

मै तुम्हे पत्नी समझ पाया कहाँ था, खेल की तुम थी सहेली।
कुछ सजावट, कुछ बनावट, कुछ तमाशा
दो घरो का याद मुझको,
दे गया था फिर न जाने कौन मेरे
ब्याह का सवाद मुझको,
इस प्रदशन के हमी-तुम केंद्र थे, यह
तो बहुत दिन बाद सूझा,
मै तुम्हे पत्नी समझ पाया कहा था, खेल की तुम थी सहेली।

उस लडकपन औ' जवानी के शुरू की
उलझनो को क्या बताऊँ,
भूलने का नाम वे लेती नही हैं
मैं उन्हे कितना भुलाऊँ।
एक दिन मै सत्य की ले लाश बठा,
और सपना उड गया था,
जिस दिवस आइ उसी दिन की तरह थी आज भी पीली हथेली।
मै तुम्हे पत्नी समझ पाया कहा था, खेल की तुम थी सहेली।

प्यार किस दिन था तुम्हारा और मेरा,
तुम वही थी जो कि मैं था,
हम अलग हो जायगे इसकी कभी भी
थी न शका औ' न भय था,
किंतु उस दिन से धरातल दो तुम्हारे
और मेरे हो गए थे—
जर्जरित प्रतिपल यहां मैं, पर रही थी सवदा को तुम नवेली।
मैं तुम्हें पत्नी समझ पाया कहां था, खेल की तुम थी सहेली!

खोजता मैं उस धरातल को अँधेरे
के तलातल मे समाया,
औ' वहां मैंने कटारी-सा चमकता
एक नूतन चाद पाया,
कुछ नियति सकेत समझा औ' उसे ले
वस कलेजे मे धँसाया,
रक्त से मुझको नहाना था मगर मैं
एक आभा मे नहाया।
आख जो ऊपर उठाई तो सितारे
दो रहे थे कर इशारे,
और तब से आज तक चलता रहा हूँ
एक उनके ही सहारे!
उस तिमिर की श्यामता मे क्या छिपा था तेज, मुझको यह पहेली।
मै तुम्हे पत्नी समझ पाया कहा था, खेल की तुम थी सहेली!

४३

श्यामा रानी थी पडी रोग की शैया पर,
दो सौ सोलह दिन कठिन कष्ट मे थे बीते,
सघर्ष मौत से बचने और बचाने का
था छिडा हुआ, या हम जीते या वह जीते।

सहसा मुझको यह लगा, हार उसने मानी,
तन डाल दिया ढीला आँखो से अश्रु बहे,
बोली, 'मुझ पर कोई ऐसी रचना करना,
जिससे दुनिया के अदर मेरी याद रहे।'

मै चौक पडा, ये शब्द इस तरह के थे जो
बैठते न थे उसके चरित्र के ढाचे मे,
वह बनी हुई थी और तरह की मिट्टी से,
वह ढली हुई थी और तरह के साचे मे,

जिसम दुनिया के प्रति अनत आकर्षण था,
जिसम जीवन के लिए असीम पिपासा थी,
जिसम अपनी लघुता की वह व्यापकता थी,
यश, नाम, याद की रच नही अभिलाषा थी।

यथा निकट मृत्यु के आ मनुष्य बदला करता,
चट मैंने उसकी आखो में आँखें डाली,
वे भूठ नही पल भर पलको मे छिपा सकी,
वे बोल उठी सच, थी इतनी भोली-भाली।

जब मैं न रहूँगी तब घडियो का सूनापन,
खालीपन तुम्हे डरायेगा, खा जाएगा,
मेरा कहना करने मे तुम लग जाओगे,
तो वह विधुरा घडियो का मन बहलाएगा।

मैं बहुत दिनो से ऐसा सुनता आता हूँ,
जो ताज आगरा मे जमुना के तट पर है,
मुमताजमहल के तन-मन की मोहकता के
प्रति शाहजहा का प्रीति-प्रतीक मनोहर है।

मुमताज आखिरी सांसो से यह बोली थी,
'मेरी समाधि पर ऐसा रौजा बनवाना,
जैसा न कही दुनिया मे हो, जैसा न कभी
सभव हो पाए फिर दुनिया मे बन पाना।'

मुमताजमहल जब चली गई तब शाहजहाँ
की सूनी, खाली, काली, कातर घडियो को,
यह ताजमहल बहलाता था, सहलाता था,
जोडा करता था सुधि की टूटी लडियो को।

मुमताजमहल भी नही नाम की भूखी थी,
आखिरी नजर से शाहजहाँ की ओर देख,
वह समझ गई थी जो रहस्य सकेतो से
बतलाती थी उसके माथे पर पडी रेख।

वह काँप उठी, अपनी अंतिम इच्छा कहकर
वह विदा हुई औ' शाहजहा का ध्यान लगा,
उन अशुभ इरादो से हटकर उन सपनो में
जो अपने अस्फुट शब्दो से वह गई जगा।

यह ताज शाह का प्रेम प्रतीक नहीं इतना
जितना मुमताजमहल के कोमल भावो का,
जो जीकर शीतल सीकर बनता तापो पर,
जो मरकर सुखकर मरहम बनता घावो का।

४४

गाता हूँ अपनी लय-भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

पढता हूँ अंग्रेजी जिसने
द्वार जगत-कविता के खोले,
रहती है मन की मन ही के
बीच बिना अवधी मे बोले,
लिखता हूँ हिंदी मे जिसकी
है उर्दू के साथ मिताई,
गाता हूँ अपनी लय-भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

और यही के मिट्टी-पानी
से विरचित है मेरी काया,
अरे पूवजो, किस तप-बल से
था तुमने वह पुण्य कमाया,
ऊँचा से ऊँचा भी अतिम
वार यहा रजकण बन आता?
भारत की धरती के ऊपर चल आई यह रीति सगर से।
गाता हूँ अपनी लय भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

भरद्वाज मुनि जहा बसे थे
उसी जगह पर आते जाते

मेरी आधी उम्र चुकी है
लिखते-पढते और पढाते

उनके यज्ञस्थल पर अब भी
सरस्वती सरिता लहराती,
अनुमानो उसकी गहराई मत मेरी इस अल्प गगर से।
गाता हूँ अपनी लय-भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

जिस बोली म गगा-जमुना
आपस मे बोला करती है,
जाडा, गर्मी, बरसातो मे
जिस गति से डोला करती है,
नकल उसीकी मैने की है
अपने शब्द, पदो, छदो म
मेरी स्वर लहरी आई है गग-जमुन की लहर अमर से।
गाता मैं अपनी लय भाषा सीख इलाहाबाद नगर से।

४५

तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुम कही नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछूं,
है कौन तुम्हारी झोली मे ऐसा सबरा ?
जीवन के पथ पर है कोई चलनेवाला
बीते दिन की कुछ सुधियां जिसके साथ नही,
जो फिर-फिर उठकर अतर को मथती रहती,
थिर जो रहने देती क्षण भर को माथ नही ?
मिट्टी का चोला जो धरकर के आया है,
उसको मिट्टी का धर्म निभाना होगा ही,
शीतल छाया मे बैठ थके-मांदे पैरो
को सुस्ता लेने देना है अपराध नही,
जो भगते, मजिल का कर चुकते है निश्चय,
वे भी सदाय रो मुक्त कहां रह पाते है ?
तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुम कही नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछूं,
है कौन तुम्हारी झोली मे ऐसा सबल ?

काले काले बादल उठ आठ दिशाओ से
घेरे लेते हैं नभ के चौडे आगन को,
चपला का चाबुक ऐसा तन पर पडता है
वे रोक नही पाते हैं अपने क्रदन को,
किस वन के पल्लव नीडो में जा छिपने को
यह पवन बडी तेजी से भागा जाता है,
आतक भरे ऐसे पल मे शरणस्थल की
आवश्यकता होती ही है मानव मन को,
नदियो मे उमडी बाढ, पर्वताकार लहर
विक्षुब्ध उदधि में उठ-उठ फिर-फिर गिरती है,

तुम कभी नही रुकते अबुधि के गजन से,
तुम कभी नही थमते जलधर के तजन पर,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछू,
है कौन तुम्हारी छाती मे ऐसी हलचल ?

तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुमी कभी नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछू,
है कौन तुम्हारी झोली मे ऐसा सबल ?

तुम भाग्य सराहो अपना, ऐसा कम होता,
विथकित घडियो के पास पडी अमराई है,
मृदु मजरियो के सौरभ से मदमस्त हवा
यह कहती है मधुऋतु की बेला आई है,

किस धुँधले, गहरे, बिसरे युग की हूक सजग
हो उठती है कोयल की पचम तानो से,
किन आदिम, अस्फुट भावो की सोई ध्वनियाँ,
भौंरो के गुन गुन मे लेती अँगडाई हैं,
मधुवन आया, गुजरा, पीछे भी छूट गया,
वन-रागिनियाँ हो मद, मधुर कुछ और हुई,
तुम कभी नही रुकते कोकिल के कूजन से,
तुम कभी नही थमते भ्रमरो के गुजन पर,
तुम आगे ही वढते जाते, पथी, पूछू,
है तुम्हे सुनाई देती किसकी पग पायल ?
तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुम कभी नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढते जाते, पथी, पूछू,
है कौन तुम्हारी झोली मे ऐसा सबल ?

आँखो मे गडनेवाले जग से घबराकर
चिंतित प्राय अबर को देखा करते हैं,
नीले नभ मे क्या स्वप्न मजीले बसते है,
नखतो से किन गीतो के निर्झर झरते है,
जो लाख परेशानी मे भी मन बहलाते,
जो सहलाते गहरी से गहरी चोटो को,
सिर नीचा रखनेवालो की कितनी चिंता,
तृण पत्तो की पलको के जलकण हरते है,

किसको फुरसत है शीश उठा देखे ऊपर,
किसको छुट्टी है शीश झुका नीचे देखे,
तुम कभी नही रुकते तारो के गायन से,
तुम कभी नही थमते शबनम के रोदन पर,
तुम आगे ही बढ़ते जाते, पथी, पूछूँ,
तुमसे मिलने को कौन कहाँ व्याकुल विह्वल?
तुम कभी नही मुडकर पीछे देखा करते,
तुम कही नही थमते पल भर दम लेने को,
तुम आगे ही बढ़ते जाते, पथी, पूछूं,
है कौन तुम्हारी झोली म ऐसा सबल?

४६

एक गीत ऐसा मै गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी !

रूपमती, रजित, रसवती,
गधमयी यह भूमि हमारी,
लेकिन फिर भी स्वर्ग प्रशसित,
स्वप्न-कल्पना की बलिहारी !
आज दूर का ढोल, निकट की
बीन बजे, दोनो झकृत हो,
एक गीत ऐसा मै गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी !

इतना छोटा हृदय कि तुमने
एक जगह पर वार दिया है,
व्यर्थ गगन पर उडुगण, भू पर
फलो ने शृगार किया है,
अपने प्रिय सी छवि दिखलाई
दे मुझको हर कण, हर क्षण की,
एक प्रीति ऐसी कर पाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी !
एक गीत ऐसा मै गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी !

सुर सतुष्ट बहुत है इससे,
मृत्यु विजय करके बैठे हैं,
पत्थर की प्रतिमा हो जाने
के ऊपर इतना ऐंठे हैं!

दृग-जल वत् अपने प्राणों को
पुन-पुन न्योछावर करके,
एक जीत ऐसी मैं लाऊ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी!
एक गीत ऐसा मै गाऊ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी!

चली सदा से जो आई है
मानव की गर्वीली थाती,
तरसा करती जिसको पाने
को देवो की वध्या छाती,

लेती है अवतार अमरता
जिसके अदर से धरती पर,
एक पीर ऐसी अपनाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी!
एक गीत ऐसा मै गाऊँ, भूमि लगे स्वर्गों से प्यारी!

४७

आज न मुझसे बोलो, अपने अंतस्तल मे राग लिए मै।
ओछे आज मुझे लगते हो
ओ, जो तुम धन-धाम सँवारे,
थोथे आज मुझे लगते है
पोथे, नाम, खिताब तुम्हारे,
गुड्डे-गुडिया, राजा-रानी,
खेल खिलौने, दड-सिंहासन,
आज न मुझसे बोलो, अपने अंतस्तल मे राग लिए मै।

नीति बनाकर तुम लौटे हो,
देश चलेगा पीछे पीछे,
एक उठेगा यदि ऊपर को
एक चला जाएगा नीचे,
सबके हित की बात अकेली
कवि की वाणी कर सकती है,
अपने स्वर मे आने वाली मानवता का भाग लिए मै।
आज न मुझसे बोलो, अपने अंतस्तल मे राग लिए मै।

बैंड, बिगुल, झंडे, सेना के
ऊपर तुम ऐंठे, सेनानी,
सबके अतपंट पर लिखता
हूँ मैं अपनी जीत-कहानी
गीत सुनाकर, तुमसे ऊँची
गर्दन करके क्यो न चलूँ मैं,
केवल अपने हाथो के बल मन की वीणा साथ लिए मैं।
आज न मुझसे बोलो, अपने अतस्तल में राग लिए मैं।

कूद पडा मै, मुझको जीवन
की लहरो ने था ललकारा,
हुआ सदा करता है काफी
मुझे प्रकृति का एक इशारा,
आज कला, नैतिकता दोनो
अगीकार नही कर सकते,
और न तज ही सकते मुझको, ऐसा सुदर पाप किए मैं।
आज न मुझसे बोलो, अपने अतस्तल मे राग लिए मै।

४८

गीत मधुर-सुकुमार लिए तू,
भावो का शृगार लिए तू,
शीश झुका चल,
शीश झुका चल ।

घर की छत के ऊपर चढकर
जो चिल्लाते, शोर मचाते,
अपना पोलापन दिखलाते,
अपना बौनापन बतलाते,

घर के अनदेखे कोने म
तेरी वाणी की प्रतिध्वनि सुन

अनजानी आहे उठ पडती,
अनजाने आसू झर जाते ।

गीत मधुर-सुकुमार लिए तू,
भावो का शृगार लिए तू,
शीश झुका चल,
शीश झुका चल ।

हल्के उठ जाते है ऊपर,
भारी भार लिए है नीचे,
जो आगे-आगे इतराते,
देख उधर से, वे है पीछे,

उनसे तेरी होड नही है,
तेरा उनका जोड नही है,

उनको दुनिया खीच रही है,
दुनिया चलती तेरे खीचे,

बहुत मिला तुझको जीवन से,
बहुत मिला साहित्य मनन से,
कर्ज़ चुका चल,
कर्ज चुका चल।
गीत मधुर सुकुमार लिए तू,
भावो का शृगार लिए तू,
शीश झुका चल,
शीश झुका चल।

४६

अनमिल तार सभी बाहर के, अदर के कुछ तार मिला लू।
अबर का सगीत किसी दिन
ओस कणो ने दुहराया था,
ओस कणो का राग किसी दिन
इद्रधनुष ने अपनाया था,
दोनो म अलगाव किए अब
अधड एक अबर मे उठकर,
अनमिल तार सभी बाहर के, अदर के कुछ तार मिला लूँ।

मद पवन को मैंने देखा
कलिका कलिका को हलराते,
अध पवन को देख रहा हूँ
गिन गिन उनको तोड गिराते,
मधुवन के जो फूल गए झड
अब तो उनकी शरण धरणि है,
मन के जो सूखे-मुर्झाए ऐसे ही कुछ फूल खिला लूँ।
अनमिल तार सभी बाहर के, अदर के कुछ तार मिला लूँ।

एक सास लय के अतर म
गीत सृजन का भर सकती है,
एक सास यदि उसमे दम हो
तो क्या से क्या कर सकती है।
वह सासो की सास बडे तप-
साधन से वश मे आती है,
कर लूगा सतोप अगर मै अपने सपने चार जिला लू।
अनमिल तार सभी बाहर के, अदर के कुछ तार मिला लू।

सत्य मिटा जाता है, मै हूँ
सपनो का ससार बनाए,
पर इन सपनो म ही सच का
मै हूँ कुछ कुछ अश बचाए,
सत्य प्रतिष्ठित होगा जिस दिन
फिर से, इसका राज खुलेगा,
आज सशक जगत को कैसे मै इसका विश्वास दिला दू।
अनमिल तार सभी बाहर के, अदर के कुछ तार मिला लू।

५०

काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।
यह कहा किसने कि जिसके शीश पर है
ताज बस राजा वही है,
और उनको क्या कहोगे राज्य जिनके
वास्ते कुछ भी नही है,
वे कुबेरी सपदा को भावना की
कौडियो पर बेच आते,
काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।

कटको का जो मुकुट मस्तक चढाए
हैं, उन्हीकी है वसीयत,
जो भिखारी का बनाए भेस घूमे,
राजसी, पर, थी तबीयत,
है उन्हीके दान से धनवान दुनिया
और वैभवमान दुनिया,
जो बने सतान उनकी काम उसका उस खजाने को बढाना।
काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।

प्रेरणाएँ किन सुरा के निर्झरा से
जाम भर-भर ला रही हैं,
और कविता सुदरी अविराम पीती,
मस्त होती जा रही है,
कस्म ली थी, मैं न प्याले को छुऊँगा
होठ से, लेकिन, अधर को ?
मैं समझ सकता भली विधि, स्वग का सौभाग्य पर मेरे सिहाना।
काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।

यामिनी है, कामिनी है और सिर म
देवताओं का नशा है,
बोलता जो प्र'ध्वनित आकाश करता
और दुहराती रसा है,
ढूढने जाता नही हूँ मैं जमाने
को कभी इस तख्त से हट,
सौ गरज उसकी पडी हो तो मुझे ही खोजने आए जमाना।
काम शाहशाह का है या फकीरो का बनाना गीत, गाना।

५१

वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।
मुझे चाहिए वन जीवन का
जिसमे यौवन हो अमराई,
सांस नई जिसमे वासती
स्वस्थ संदेसा हो ले आई,
नई भूख से, नई हूक से,
नई कूक से जो अस्थिर हो,
वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।

है कोई भौगोलिक, जिसने
जीवन की सीमा बतलाई,
जो कि सका है आंक जवानी
की ऊँचाई औ' गहराई
नव पल्लव, मृदु मजरियो मे
फुदक-फुदक पिक थक जाता है,
और मुझे विचरण करना है चौमापी धरती-अबर को।
वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।

कोयल ने तो एक तान मे
सार प्रकृति का छान लिया है,
किंतु नशी मानव दुनिया को
दान हुआ ऐसा रसिया है,
इसपर कहते ही, लिखते ही
कही लिखी हर बात पुरानी,
जितनी बार खुले मुख मेरा, भाव नए, नव पद, लय, स्वर दो।
वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।

हर नूतन गति ध्वनि से डरने
वाले बुज़दिल पास कही हैं,
कहते, 'ज्ञात अचल-पखो का
क्या तुमको इतिहास नही है ?'
नही गलतफहमी है मुझको
अपने बाजू के बारे म,
लक्ष्य शक्र शर का बनना भी, कुछ मानी रखता, नामर्दो !
वन कोकिल का कठ मुझे दो, कधो को पर्वत के पर दो।

५२

अग से मेरे लगा तू अग ऐसे, आज तू ही बोल मेरे भी गले से ।
पाप हो या पुण्य हो, मैने किया है
आज तक कुछ भी नही आधे हृदय से,
औ' न आधी हार से मानी पराजय
औ' न की तसकीन ही आधी विजय से,
आज मै सम्पूर्ण अपने को उठाकर
अवतरित ध्वनि-शब्द मे करने चला हूँ,
अग से मेरे लगा तू अग ऐसे, आज तू ही बोल मेरे भी गले से ।

और है क्या खास मुझमे जो कि अपने
आपको साकार करना चाहता हूँ,
खास यह है, सब तरह की खासियत से
आज मैं इन्कार करना चाहता हूँ,
हूँ न सोना, हूँ न चाँदी, हूँ न मूगा,
हूँ न माणिक, हूँ न मोती, हूँ न हीरा,
किंतु मैं आह्वान करने जा रहा हूँ देवता का एक मिट्टी के डले से ।
अग से मेरे लगा तू अग ऐसे, आज तू ही बोल मेरे भी गले से ।

श्रोर मेरे देवता भी वे नही है
जो कि ऊँचे स्वर्ग मे हैं वास करते,
श्रोर जो श्रपनी महत्ता छोड, सत्ता
म किसीको भी नही विश्वास करते,
देवता मेरे वही हैं जो कि जीवन
मे पडे सघर्ष करते, गीत गाते,
मुसकराते श्रोर जो छाती वढाते एक होने के लिए हर दिलजले से।
श्रग से मेरे लगा तू श्रग ऐसे, श्राज तू ही वोल मेरे भी गले से।

छप चुकी मेरी किताबे पूरबी श्रो'
पच्छिमी—दोनो तरह के श्रक्षरो म,
श्रो' सुने भी जा चुके है भाव मेरे
देश श्रो' परदेश—दोनो के स्वरो मे,
पर खुशी से नाचने को पाव मेरे,
उस समय तक हैं नही तैयार जब तक,
गीत श्रपना मै नही सुनता किसी गगोजमुन के तीर फिरते बावले से।
श्रग से मेरे लगा तू श्रग ऐमे श्राज तू ही वोल मेरे भी गले से।

५३

मैं प्रकृति-प्राकृत जनो का मान श्रौ' गुनगान करना चाहता हूँ।
तुम उठे ऊँचे यहाँ तक स्वर्ग को ले
गोद मे तुमने खेलाया,
किंतु क्या यह सच नही, तुमने धरणि की
भावनाश्रो को भुलाया ?
श्रौर वाणी को गए सौगध देकर
एक हरि का यश बखाने,
सिर धुने, पछताय, श्रपना भाग्य कोसे
दूसरा यदि नाम जाने,
बोलने को श्राज व्याकुल हो रही है
भूमि की सोई हुई तह,
यदि गिरा गिरती नही है श्राज नीचे
व्योम मे खो जायगी वह,
निम्न कुछ ऐसा नही जिसको छुए वह
श्रौ' न ऊपर को उठाए,
मैं प्रकृति-प्राकृत जनो का मान श्रौ' गुनगान करना चाहता हूँ।

स्वर्ग सब आनन्द गुण का धाम, उसका
कुछ नही है ज्ञान मुझको,
किंतु जो सघर्ष से लिपटी धरणि
उसपर बडा अभिमान मुझको,
धन्य तुम हो जो तुम्हे भगवान अपने
साथ मे बांधे हुए थे,
किंतु सोते जागते कब छोडता है
द्रोहमय इन्सान मुझको ?
और जो उसके हृदय मे हलचलें है,
कौन उनको जानता है ?
जो नही इंसान को पहचानता,
भगवान को पहचानता है ?

मानवों का दुख, सुख, बल, भीति जाने,
प्रीति जाने, मुंह न खोले,

मै किसी युग मे किए अपराध का अब दण्ड भरना चाहता हूँ।
मै प्रकृति प्राकृत जनो का मान औ' गुनगान करना चाहता हूँ।

व्योम क्या देखा कि तुमने भूमि पर से
आंख ही अपनी हटा ली,
मृत्तिका के पुत्र की, पर, चाहिए
होनी नही ऐसी प्रणाली,
एक फौआरा धरा को छोड नभ छू
फिर धरा को लौट आता,

वह कभी आकाश के ऊपर नही
आवास अपना है बनाता,
जो न ऊपर चढ सके जलधार ऐसी
काम की मेरे नही है,
किंतु ऊपर गो गई जो सवदा को,
वंचिता उससे नही है,
ऊर्ध्व करता भूमि को आशा, अधोमुख
व्योम का आशीप करता,
मै अवनि अवर मिलाता आज चढ-चढकर उतरना चाहता हूँ।
मैं प्रकृति-प्राकृत जनो का मान औ' गुनगान करना चाहता हूँ।

५४

गम लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।
सख्त पजा, नस-कसी चौडी कलाई
और बल्लेदार बाहे,
और आँखें लाल चिन्गारी सरीखी,
चुस्त औ' सीखी निगाहे,
हाथ म घन और दो लोहे निहाई
पर धरे तो, देखता क्या,
गम लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

भीग उठता है, पसीने से नहाता
एक से जो जूझता है,
जोम मे तुझको जवानी के न जाने
खब्त क्या क्या सूझता है,
या किसी नभ देवता ने ध्येय से कुछ
फेर दी यो बुद्धि तेरी,
कुछ बडा तुझको बनाना है कि तेरा इम्तहाँ होता कडा है।
गर्म लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

एक गज़ छाती मगर सौ गज बराबर
हौसला उसमे, सही है,
कान करनी चाहिए जो कुछ तजुर्बे-
कार लोगो ने कही है,

स्वप्न से लड स्वप्न की ही शक्ल मे है
लोह के टुकडे बदलते,

लौह-सा वह ठोस बनकर है निकलता जो कि लोहे से लडा है।
गम लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

घन हथौडे और तौले हाथ की दे
चोट अब तलवार गढ तू,
और है किस चीज़ की तुझसे भविष्यत
माग करता, आज पढ तू,

औ'अमित सतान को अपनी थमा जा
धारवाली यह धरोहर,

वह अजित ससार मे है शब्द का सर खड्ग लेकर जो खडा है।
गम लोहा पीट, ठडा पीटने को वक्त बहुतेरा पडा है।

५५

रागिनी, मत छेड मुझको आज, मै ससार से छेडा हुआ हूँ।
काश यह होता कि तेरा साथ मिलता
और दिल को चाह मिलती,
और चलने को, नही परवाह, चाहे
जिस तरह की राह मिलती,
किंतु दुश्मन लग गया है सग, उससे
भी मुझे पडता उलझना,
रागिनी, मत छेड मुझको आज, मै ससार से छेडा हुआ हूँ।

आज भी इतिहास हमको उस जमाने
की कथाएँ है बताते,
जबकि वीसो और अपनी शक्तियो को
लोग चलते थे लुटाते
कौन सा ऐसा किया था पाप जो इस
कापुरुष युग मे हुआ मै,
घेरता ससार को, पर आज मै ससार से घेरा हुआ हूँ।
रागिनी, मत छेड मुझको आज, मैं ससार से छेडा हुआ हूँ।

चाहता था मै उन्ही नर नाहरो की
भांति जीवन को बिताना,
प्रीति करना, गीत गाना, मस्त रहना,
शत्रु को नीचा दिखाना,
उस वजे की जिंदगी का भेद कोई
खो चुका, वरना वही मै
विश्व को चिंतित बनाता, विश्व चिंता का कि जो डेरा हुआ हूं।
रागिनी, मत छेड मुझको आज, मै ससार से छेडा हुआ हूं।

किंतु यदि ससार मुझको छेडता है,
घेरता, सिर-दर्द बनता,
तो बिना सदेह मेरा काम पहला
है, अगर मै मर्द बनता,
सामना उसका करूं मै और घुटनो
के तले उसको दबाऊ
सब जगह असमर्थ हूं मै, इस वजह से तो नही तेरा हुआ हूं,
रागिनी, मत छेड मुझको आज, मै ससार से छेडा हुआ हूं।

५६

पीठ पर धर बोझ अपनी राह नापूं,
या किसी कलि-कुंज मे रम गीत गाऊँ?
जब मुझे इन्सान का चोला मिला है,
भार को स्वीकार करना शान मेरी,
रीढ मेरी आज भी सीधी तनी है,
सख्त पिंडली औ' कसी है रान मेरी,
किंतु दिल कोमल मिला है, क्या करूँ मै,
देख छाया कशमकश मे पड गया हूँ, सोचता हूँ,
पीठ पर धर बोझ अपनी राह नापूं,
या किसी कलि कुंज मे रम गीत गाऊँ?

कौन-सी ज्वाला हृदय मे जल रही है
जो हरी दूर्वा-दरी मन मोहती है,
किस उपेक्षा को भुलाने के लिए हर
फूल कलिका बाट मेरा जोहती है,
किसलयो पर सोहती हैं किसलिए बूंदे
कि अपने आसुओ को देखकर मै मुसकराऊँ,
क्या लताएँ इसलिए ही झुक गई हैं,
हाथ इनका थामकर मैं बैठ जाऊँ?

५७

बहुत दिए है, किस किस पर तू वारेगा पर, हे परवाने!

नीलम-नील गगन के ऊपर
जितने झलमल करते तारे,
मरकत हरित धरणि के ऊपर
जितने जाते फल सँवारे,
उतने दीप जला करते है
मन की इस मोहक नगरी म,
बहुत दिए है किस-किसपर तू वारेगा पर, हे परवाने!

एक एक दीपक के तन मे
जाग रही है इतनी ज्वाला,
जलकर क्षार-क्षार हो जाए
लाख-लाख शलभो की माला,
और अनेक अधर बाती से
बतियाने का तू अरमानी,
कहा चला आया, दीवाने, बिन अपना कस बल पहचाने।
बहुत दिए है, किस-किसपर तू वारेगा पर, हे परवाने!

दीवो के इस जगमग मेले
के अदर यदि तू तब आता,
जब था तेरे पर-प्राणो को
नवयौवन का ज्वर बलकाता,
शर-सा तू उस लौ पर जाता
जो तुझको पहले दिख जाती,
छूट फुलझडी-सा तू जाता विस्मृति के क्षण मे अनजाने।
बहुत दिए है, किस-किसपर तू वारेगा पर, हे परवाने!

ज्योति शिखाओ पर अब सारी
साथ नजर जाती है तेरी,
सबका अपना राग अनेरा,
सबकी अपनी आग अनेरी,
और अनेरे सबके ऊपर
पख विसर्जन करनेवाले,
सबके दाह-दहे अतस की बात कहे, गा तू वह गाने।
बहुत दिए हैं, किस किस पर तू वारेगा पर, हे परवाने!

५८

धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ मे बेज़ार होता।
सब यहा कुछ बाहरी, कुछ भीतरी, कुछ
आसमानी, कुछ जमीनी,
धार कुछ जाने न जाने, जानती है
वह नही ढुलमुल यकीनी,
लाख की भी भीड मे सबसे अलग हो
जो खडी हो, चीज़ है वह,
धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ मे बेज़ार होता।

मैं अपरिचित हूँ नही उन कायरो से
जोकि उससे भागते है,
वीर अपने रक्त का कर अर्घ्य अर्पित
दान अपना मांगते है,
रूप की देवी निखरती है उसीसे
स्नान करके, कापुरुष का
भीरु, दुर्बल अश्रु दुनिया मे किसीको भी नही स्वीकार होता।
धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ में बेज़ार होता।

धार पर चलना कठिन है पर कठिनतर
धार को पहचानना है,
आँख जो उसको न चूके, माँगती वह
एक युग की साधना है,
वह चपल गायब कभी तलवार से भी,
ओस मे भी लपलपाती,
मैं सजग रहता हमेशा तो न मेरा और ही उद्‌गार होता ?
धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ मै बेज़ार होता।

जो यहाँ आया कभी न कभी सभी को
मौत है पामाल करती,
फूल से ले वज्र तक वह हर तरह का
अस्त्र इस्तेमाल करती,
काटने तन तंतु मेरा जब झपटती—
कौन है जो मन छुए वह—
चाहता मै हाथ उसके तेज कोई शब्द का हथियार होता।
धार पैनी देख उसपर फेरने को हाथ मैं बेज़ार होता।

५९

तुम भोगो, तुम जो भाव-भरा मन लाए।
घन बरसे तो मड बनाकर
खेत जगत ने सीचा,
पर बेकार खडे पानी को
दोनो हाथ उलीचा,
तुम्हे दिखे बादल की आखा
म विरही के ग्रासू,
जिसम तुमने भी अपने अश्रु मिलाए।
तुम भोगो तुम जो भाव भरा मन लाए।

आमो के गुच्छे दुनिया ने
मजरिया मे देखे,
सौरभ की परियो के वे थे
नीड तुम्हारे लेखे,
चतुर भ्रमर गुन गीत सुना
पी गए अघर की मदिरा,
तुम रहे तृषा से अपना कठ जलाए।
तुम भोगो, तुम जो भाव-भरा मन लाए।

फलो का उपयोग यही है
चुन चुन हार बनाओ,
लेकिन बीच पडे तो उनको
तोडो, दूर हटाओ,
हाथो की छाया भी तुमने
भूल न इनपर डाली,
पर ये डालो पर खिलते ही मुरझाए।
तुम भोगो, तुम जो भाव भरा मन लाए।

प्राणो से प्रिय प्राणहीन की
सेज चिता ही होती,
नही पलक पर फिर चढ पाता
ढलक पडा जो मोती,
वहा राख को भी धारा मे
आख फेर जग लेता,
मृत सपने, पर, तुम छाती से चिपकाए।
तुम भोगो, तुम जो भाव भरा मन लाए।

६०

तुमने मागा हृदय प्यार कर सकने वाला,
तुम्हे शिकायत करने का अधिकार नही है।

तुम्हे कल्पना मिली स्वग का सपना देखो,
अर्थ नही है इसका धरती को अपमानो,
देवो का है ज्ञात बडप्पन, इसका मतलब
कभी नही है इसानो को छोटा जानो,

प्यार पूणता मागा करता है, यह सच है,
यह भी सच है, प्यार पूर्णता दे सकता है,
तुमने मागा हृदय प्यार कर सकने वाला,
तुम्हे शिकायत करने का अधिकार नही है।

यह किसको मालूम कि किसने किस वेला मे
इस पृथ्वी को ही कहकर वकुठ दुलारा,
किस भावाकुलता म, कैसी आतुरता से
इस मिट्टी के पुतले को भगवान पुकारा।

और प्रतिध्वनि उसकी अब तक होती आती,
याद नही क्या हो आई कुछ बीती घडिया ?

कौन अभागा है जिसकी सुधियो मे संचित
कुछ ऐसे पागलपन का उद्गार नही है।
तुमने मागा हृदय प्यार कर सकने वाला,
तुम्ह शिकायत करने का अधिकार नही है।

जो दुनिया को नापा करते हैं रूले से,
करते रोज़ हिसाब कहां से, कितना लेना,
जो मन के स्वर्गों से, यह अनुभव करते हैं,
इस जगती को अभी बहुत कुछ देना देना,
वे त्रुटियो पर क्रोध करे तो कर सकते है,
तुम तो उनपर अपने अश्रु बहा सकते हो,
यह नैसर्गिक असन्तोष तप से मिलता है,
सटको पर बँटनेवाला उपहार नही है,
तुमने मागा हृदय प्यार कर सकने वाला,
तुम्ह शिकायत करने का अधिकार नही है।

६१

बावली-सी घूमती थी वह, उसे मैं देखते ही हो गया आसक्त !
काकुलें छिटकी हुई थीं भाल पर औ'
गाल पर नागिन सरीखी,
किंतु शासन में उन्हें रक्खे हुए थी
चमचमाती आंख तीखी,
और जिस संसार में हर शख्स अपने
पांव को आगे बढाता,
बाद को, पहले इरादे औ' निगाहें
लक्ष्य के ऊपर लगाता,
वह ठहरती और फिरती थी किन्हीं
अज्ञात हाथों की चलाई !
बावली-सी घूमती थी वह, उसे मैं देखते ही हो गया आसक्त !

इस गली से, उस गली से, घूर से इस
ढूह से उस, क्यों न जाने
कंकड़ों का जो ब्रजा वह चुन रही थी
हो कि जैसे वे खजाने,
था जिन्हें फेंका जगत ने जानकर
बेकार कूड़े की जगह पर,

किंतु जिनकी कीमतें वह जानती थी
औ' सँजोती थी परखकर,
आ गई बाज़ार में वह और चारों
ओर उसके भीड़ छाई
दर्शकों की, कम नवी के हों भले, पर अजनबीपन के बहुत-से भक्त।
बावली-सी घूमती थी वह, उसे मैं देखते ही हो गया आसक्त!

खोलकर झोली निकाला एक उसने
लाल पानी का कटोरा,
और संचित कंकड़ों में से उठाकर
एक उसके बीच बोरा,
और जब उसने निकाला तब हथेली
पर उजाला हो गया था,
उस कलुष अपरूप कंकड़ की जगह पर
एक माणिक ही नया था,
सब चकित-चुप थे कि मैंने प्रश्न पूछा,
'हो क्षमा मेरी ढिठाई,
क्या बताओगी कि माणिक में समाई
कौन से द्रव की ललाई?'

६२

याद-याद-सी शक्ल तुम्हारी, भूला-भूला नाम तुम्हारा।
देश-काल के अन्तराल को
काट आज सहसा तुम आईं,
खड़ी हो गईं प्रश्न चिन्ह सी
कुछ भरमाईं, कुछ शरमाईं।
'पहचाना ?' तुम पूछ रही हो,
मैं कह सकता हूँ इतना ही—
याद याद सी शक्ल तुम्हारी, भूला भूला नाम तुम्हारा।

क्रूर समय के आघातों के
पीछे जाना चाह रहा हूँ,
दूर यहां से, अब से जाकर
पहुँच गया मैं, आह, कहां हूँ!
मेरे यौवन की आंखों ने
तुम्हें किसी दिन क्या बाँधा था?
हाथों ने कुछ बात कही थी हाथ कहीं क्या थाम तुम्हारा?
याद-याद सी शक्ल तुम्हारी, भूला भूला नाम तुम्हारा।

या तुमने अपने नयनो की
मदिरा म था मुझे डुबोया,
समझा था तुम खोई खोई,
जब मै था खुद खोया-खोया !

अधकचरे जीवन मे मेरे
ऐसे धोखे बहुत हुए हैं—

पिला रहा हूँ तुमको, समझा, जब पीता था जाम तुम्हारा।
याद याद सी शक्ल तुम्हारी, भूला-भूला नाम तुम्हारा।

उमडी नद्दी की लहरो का
नाम कहा होता है, भोली ?
अधड के झड-झकझोरो का
धाम कहा हाता है, भोली ?

मेरी हिल्लोलें, कल्लोलें
अब दुनिया के बल बोलो मे,

मेरी सुध-बुध के अधसोए खँडहर से क्या काम तुम्हारा।
याद याद सी शक्ल तुम्हारी, भूला-भूला नाम तुम्हारा।

६३

सग तुम्हारे गाऊँगा मै कब उठकर, आनद विहगिनि !
कुछ अँधियारे, कुछ उजियारे
सुनता हूँ जब तान तुम्हारी,
आ जाता है ध्यान कि मुझको
करनी है दिन की तैयारी,
औ' जग धधा मे पडना है
साथ सोचता भी जाता हूँ,
सग तुम्हारे गाऊँगा मै कब उठकर, आनद विहगिनि !

खून-पसीने से दुनिया का
कर्ज चुकाकर जब आता हूँ,
तब रजनी के सूनेपन म
कुछ अपनेपन को पाता हूँ,
और गूजती ह कानो म
तब फिर प्रात की प्रतिध्वनिया
औ' ध्वनिया से उत्तर देकर गाता हूँ निर्द्वंद, विहगिनि !
सग तुम्हारे गाऊँगा मैं कब उठकर, आनद विहगिनि !

दिन को नौकर हूँ मैं लेकिन
राता को राजा बन जाता,
सपना, सत्य, कल्पना, अनुभव
का अद्भुत दरबार लगाता,
कहा-कहा से, किन किन शाहो
के मुझको सदेशे आते,
जाते है फरमान जगत मे बनकर मेरे छद, विहगिनि !
सग तुम्हारे गाऊँगा मै कब उठकर, आनद विहगिनि !

नीडो को नीरव नीदो मे
तुम क्या मेरी धुन पहचानो,
जिस दुख, सुख को म भजता हूँ
तुम क्या उसको जानो, मानो,
डाह बहुत है तुमसे मुझको
मुक्त परो की, मुक्त स्वरो की,
गो न गए दे मुझको कुछ कम जीवन के प्रतिबध, विहगिनि !
सग तुम्हारे गाऊँगा मै कब उठकर, आनद विहगिनि !

६४

राज उन्हे करने को दो तुम राज सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनको का घर भर दो।

सिर जो भीतर से छूंछा है उसके ऊपर
चमक दमक मय हीरा, मोती, माणिक लादो,
भरा हुआ है भावो से जिसका अंतस्तल
कहा उसे उद्‌गारे, उसको थल दिखलादो,

वढता है अधिकार सदा आतक जमाकर,
स्नेह प्रतीक्षा मे अपलक पथ जोहा करता।
राज उन्हे करने को दो तुम राज सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनको का घर भर दो।

जो औरो के ऊपर शासन करते उनको
खुद औरो के शासन मे रहना पडता है,
मेरा मन स्वच्छद सुनाता, गाता उसको,
साझ सकारे बैठा जो कुछ वह गढता है,

छाप-मुहर उनके फरमानो को वल देते,
मेरे अरमानो म वल मेरी सासा का,

जो न रुके दीवारो, गिरि-प्राचीरो, सागर
के तीरो से, आज मुझे तुम ऐसे स्वर दो।
राज उन्हे करने को दो तुम राज-सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनको का घर भर दो।

महल-दुमहलो के दरवाजो-मेहरावो मे
ध्वनित विकारो का भी कोई लेखा-जोखा,
जब-जब उनके नीचे से गुज़रा हूँ, मेरा
हृदय पुकार उठा, सब जड, सब मुर्दा, धोखा!
उन्हे मुबारक ठस-मज़बूत किला हो, मैंने
नीड बनाया कोमल द्रुम की धुर फुनगी पर,
खर, पर, पत्ता हर तूफान उडा ले जाए,
किंतु धडकता उर मे तुम अनुराग अमर दो।
राज उन्हे करने को दो तुम राज-सिंहासन,
प्यार मुझे करने को तिनको का घर भर दो।

६५

कुछ साहस दो तो बात कहूँ मैं मन की।
देख तुम्हे कितने भावों की
बाढ हृदय मे आती,
औ' कितनी साधा की भँवरे
नयनों म अकुलाती,
मै वाचाल, तुम्हारे सम्मुख
मूक, मगर, हो जाता,
रसना हो जाती है जैसे पाहन की।
कुछ साहस दो तो बात कहूँ मै मन की।

कभी नही, मन कहता, तुमने
की होगी प्रत्याशा,
सुनने की मुझसे जो तुमसे
बोलूगा मै भाषा,
फिर न रहेगा चित्र बनाया
जैसा तुमने मेरा,
कपित करती कल्पना मुझे उस क्षण की।
कुछ साहस दो तो बात कहूँ मैं मन की।

नेत्रो मे विंबित न हुआ क्या
होगा अतर मेरा ?
देखा होगा तुमने उसमे
किन चाहो का डेरा ?
भेद ढका जो समझ रहा हूँ
खुल न चुका क्या होगा ?
कवि कहते, आँख नही मोहताज वचन की।
कुछ साहस दो तो बात कहूँ मैं मन की।

मानव चाहे सब दुनिया से
अपना रूप छिपाए,
कही चाहता नग्नतना औ'
नग्नमना रह पाए,
मै जैसा हूँ, और न मुझको
देखे, तुम तो देखो,
वर्ना, कोई कुछ भी समझे,
एक बडी अपने को
मानूगा मै धोखेबाजी जीवन की।
कुछ साहस दो तो बात कहूँ मै मन की।

६६

बनकर केंद्र खडी तुम हो तो
मैं जीवन की परिधि बनाऊँ।

किसके चारा ओर न खीचे
मैंने अपने मन के घेरे,
मेरे उर की दुवलता के
जग मे आकर्षण बहुतेरे,
इतना थिर न रहा कोई भी
परिक्रमा पूरी हो जाती,
बनकर केंद्र खडी तुम हो तो
मैं जीवन की परिधि बनाऊँ।

खूब मुझे मालूम कि जग म
सीधी राहे भी बहुतेरी,
चलनेवालो को मजिल—
मकसूद पहुँचने मे क्या देरी,
लक्ष्य उन्होने देख लिया क्या,
पथ के फूल हुए अनदेखे,
और यहा पर टेक रही है
काटो से भी नेह लगाऊँ।

बनकर केंद्र खडी तुम हो तो
मै जीवन की परिधि बनाऊँ।

मधुवन की डाली पर कितनी
फूल और काटो की दूरी,
पर मै इनसे समझ रहा जो
उनके अंदर दुनिया पूरी,
छोटे घेरो के अंदर मन
मेरा घबराता, घुटता है,
सुदर है हर चीज यहाँ पर
किसको छोडू, क्या अपनाऊँ।
बनकर केंद्र खडी तुम हो तो
मै जीवन की परिधि बनाऊँ।

तुम स्वीकार हुई क्या, मुझको
सब जीवन स्वीकार हुआ है,
इस पथ पर जो कुछ भी मिलता
सबसे मुझको प्यार हुआ है,
स्वर्ग नरक, साधना वासना,
सुख दुख, आशा और निराशा
आलिंगन मे बद्ध खडे है,
पाप करूँगा जो अलगाऊँ।
बनकर केंद्र खडी तुम हो तो
मै जीवन की परिधि बनाऊँ।

६७

मेरे मन-प्राणो को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।
युगल तुम्हारी सघन भँवो मे
मेरा दिल पथ भूल गया है,
उदित हुआ आयत नयनो म
जैसे कोई क्षितिज नया है,
जन्म अवधि वढता जाऊँगा
तो भी छू न इसे पाऊँगा,
रुक न सकूगा, लौट न पाऊँगा, फिर भी, यह और मजा है।
मेरे मन प्राणो को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।

मेरी मृदुता इस दुनिया मे
वहुत गई रगडी-मसली है,
किंतु कठोर नही हो पाई
है, तो लगता है, असली है,
नही मुझे मालूम वना था
मैं कसे इसका अधिकारी,
या मैंने कुछ पाप किया था जिसकी, कवि को याल, सज़ा है।
मेरे मन प्राणा को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।

ग्रोट गया हो जो परत की
कल्पित उसकी मूर्ति करेगी,
काया जिसकी पास न आई
उसकी छाया को पकड़ेगी।
भावों के सौ डगर नगर-
खँडहर से होगी भागा दौड़ी,
और नतीजा इसका जो कुछ होना है वह राम-रजा है।
मेरे मन-प्राणों को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।

ओ, सुखमा की आकृतियो, जो
आकुल प्राण किया करती हो,
वह अपराध किया करती हो,
या एहसान किया करती हो,
तुम क्या जानो, कितना भारी!
कितने मन का, कितनी सुधि से,
कितनी बार, करेगा मथन, मैंने जो यह गीत रचा है।
मेरे मन प्राणों को मथने को तुमको विधि ने सिरजा है।

६८

इस रुपहरी चादनी म सो नही सकते पखेरू और हम भी।
पूर्णिमा का चाद अबर पर चढा है,
तारकावलि खो गई है,
चादनी म वह सफेदी है कि जैसे
धूप ठडी हो गई है,
नैन निद्रा के मिलन की वीथिया म
चाहिए कुछ कुछ अँधेरा,
इस रुपहरी चादनी म सो नही सकते पखेरू और हम भी।

नीड अपने छोड बैठे डाल पर कुछ
और मँडलाते हुए कुछ,
पख फडकाते हुए कुछ, चहचहाते,
बोल दुहराते हुए कुछ,
'चादनी फैली गगन म, चाह मन म',
गीत किसका है ? सुनाओ !
मौन इस मधुयामिनी म हो नही सकते पखेरू और हम भी।
इस रुपहरी चाँदनी म सो नही सकते पखेरू और हम भी।

इस तरह की रात अवर के अजिर मे
रोज तो आती नहीं है,
चाँद के ऊपर जवानी इस तरह की
रोज तो छाती नही है,
हम कभी होगे अलग, औ' साथ होकर
भी कभी, होगी तबीयत,
यह विरल अवसर विसुधि म खो नही सकते पखेरू और हम भी।
इस रुपहरी चादनी मे सो नही सकते पखेरू और हम भी।

ये विचारे तो समझते हैं कि जैसे
यह सवेरा हो गया है,
प्रकृति की नियमावली मे क्या अचानक
हेर-फेरा हो गया है,
और जो हम सब समझते हैं कहाँ इस
ज्योति का जादू समझते,
मुक्त जिसके बधनो से हो नही सकते पखेरू और हम भी।
इस रुपहरी चादनी मे सो नही सकते पखेरू और हम भी।

६९

न तुम सो रही हो, न मैं सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।
दिखाई पडे पूर्व मे जो सितारे,
वही आ गए ठीक ऊपर हमारे,
क्षितिज पच्छिमी है बुलाता उन्हे अब,
न रोके रुकेंगे हमारे-तुम्हारे।
न तुम सो रही हो, न मै सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।

उधर तुम, इधर मैं, खडी बीच दुनिया,
हरे राम! कितनी कडी बीच दुनिया,
किए पार मैंने सहज ही मरुस्थल,
सहज ही दिए चीर मैदान-जगल,
मगर माप मे चार बीते बमुश्किल,
यही एक मंजिल मुझे खल रही है।
न तुम सो रही हो, न मैं सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच म ढल रही है।

नही आख की राह रोकी किसीने,
तुम्हे देखते रात आधी गई हे,
ध्वनित कठ मे रागिनी अब नई है,
नही प्यार की आह रोकी किसीने
वढे दीप कबके, बुझे चाद तारे,
मगर आग मेरी अभी जल रही है।
न तुम सो रही हो, न मै सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।

मनाकर बहुत एक लट मै तुम्हारी
लपेटे हुए पोर पर तर्जनी के
पडा हूँ, बहुत खुश, कि इन भावरो म
मिले फारमूले मुझे जिदगी के,
भँवर मे पडा सा हृदय घूमता है,
बदन पर लहर पर लहर चल रही है।
न तुम सो रही हो न मै सो रहा हूँ,
मगर यामिनी बीच मे ढल रही है।

७०

ग्राज चचला की वाहो म उलझा दी है वाह मैने।
डाल प्रलोभन मे अपना मन
सहल फिसल नीचे को जाना,
कुछ हिम्मत का काम समझते
पाव पतन की ग्रोर वढाना,
झुके वही जिस थल झुकने म
ऊपर को उठना पडता है,
ग्राज चचला की वाहो मे उलझा दी है वाहे मैन।

कांटो से जो डरनेवाले
मत कलियो से नेह लगाएँ,
घाव नही है जिन हाथो मे,
उनम किस दिन फूल सुहाए,
नगी तलवारो की छाया
मे सुदरता विहरण करती,
ग्रौर किसीने पाई हो पर कभी नही पाई है भय ने।
ग्राज चचला की वाहा म उलझा दी है वाह मैने।

विजली से अनुराग जिसे हो
उठकर आसमान को नापे,
आग चले आलिगन करने,
तब क्या भाप-धुएँ से कापे,

साफ, उजाले वाले, रक्षित
पथ मरो के कदर के हैं,
जिनपर खतरे-जान नही था, छोड कभी दी राह मैने।
आज चचला की वाहो मे उलभा दी है वाह मैने।

वूद पडी वर्षा की चूहे
और छछूदर बिल मे भागे,
देख नही पाते वे कुछ भी
जड-पामर प्राणो के आगे,

घन से होड लगाने को तन-
मोह छोड निर्मम अवर मे
वज्र-प्रहार सहन करते हैं वैनतेय के पैने डैने।
आज चचला की वाहो मे उलभा दी है वाह मैने।

७१

सुमुखि, तब मै प्यार कर सकता तुम्हे था।
भौह की तलवार से रक्षित तुम्हारे
युग दृगो को यदि चुराता,
और ले जाकर उन्हे मै उस नदी के
बीच नहलाता धुलाता,
जो खुशी के और गम के आसुओ को
साथ लेकर बह रही है,
और जिसकी हर लहर इसान की सुख-
दुख कहानी कह रही है,
सुमुखि, तब मै प्यार कर सकता तुम्हे था।

सीख मा की, बाप की, अध्यापको की
बात पुस्तक से उठाई,
चुटकुले हमजोलियो ने जो सुनाए—
बस यही जिनकी कमाई,
कान को ऐसे चुराता यदि तुम्हारे
और ले जाता वहा पर,
स्वर्ग का उल्लास, नरकोच्छ्वास दोनो

साथ सुन पड़ते जहाँ पर,
सुमुखि, तब मै प्यार कर सकता तुम्हे था।

चरफरापन चटपटे का औ' मलाई
के बरफ की ठंड जानी
जिस अधर ने, जीभ ने, गन्ने गँडेरी
मे रसो की सब कहानी,
मैं उन्हे ले जा अगर ससार, जीवन,
प्यार की तह को छुलाता,
और हालाहल, सुरा के औ' सुधा के
स्वाद से परिचित कराता,
सुमुखि, तब मै प्यार कर सकता तुम्हे था।

सास आती और जाती है इसीसे
जो हृदय दबता-उभरता,
और अपनी धौंकनी सी हरकतो से
रक्त को जो शुद्ध करता,
उस हृदय के साथ लग जब ज्वार-भाटा
भावनाओ का बताता,
और अपनी धडकनो से उन कपाटो
की सिकडिया खटखटाता,
बद जिनम भेद हे जिनको अकेला
कवि जमाने को सुनाता,
सुमुखि, तब मैं प्यार कर सकता तुम्हे था।

७२

जिन कपाटो को तरफ मैं पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

कल तलक मै इस प्रतीक्षा म खडा था
तुम हृदय का द्वार खोलो,
और जिह्वा, कठ, तालू के नही, तुम
प्राण के दो बोल बोलो,
आज देरी हो चुकी है और मेरे
पाव धीरज खो चुके है,
जिन कपाटो की तरफ मै पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

क्या तुम्हारा ख्याल था मैं पाव अपने
तोडकर बैठा हुआ हूँ,
औ' तुम्हारी इस उपेक्षा के लिए भी
मै तुम्ह देता दुआ हूँ,
ज़िदगी के रास्ते मे ठहरने का
आज कल मौका किसे है,
खोलती भी तुम अगर पट दो दफा बस
मुसकराता, दो दफा बस आह भरता।

जिन कपाटो की तरफ मै पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

और इतने के लिए भी लोग ऐसे
हैं कि जो तरसा किए है,
क्योकि ऐसे ही मिले हैं जो कि दिल पर
लाख की मुहरे दिए है,
और उनका हास, उनकी आह, उनकी
बात कुठा मात्र होती।
मै मुखर होता अगर तो कौन मेरा
स्वर दबाता, कौन मेरी जीभ धरता।
जिन कपाटो की तरफ मैं पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

और ऐसा है, कि मेरा भ्रम, कि पीछे
से भरी आवाज आती ?
और उसको सुन प्रतिध्वनि रूप मेरी
धकधकाती छिन्न छाती,
और कुछ विच्छिन्न कडियाँ जोड लेने
के बहाने थम गया हूँ,
बोल, कवि के मन, तुझे क्या आज अपनी
जिद नही रह-रह खटकती,
प्रण नही रह-रह अखरता।
जिन कपाटो की तरफ मै पीठ करता,
फिर न उनकी ओर अपनी दीठ करता।

७३

सुर सरोवर नीर नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?
सूर्य-शशि के वश म पैदा हुआ तू,
कीर्ति जिनकी जग उजागर,
वास तेरा तीर्थ, जिसको अनगिनत जन
है गए माथा झुकाकर,
हिम शिखर की स्वच्छ औ' पावन हवा ने
है जिन्ह उडना सिखाया,
सुर सरोवर नीर-नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

देख अपने साथियो को जो धरा से
वद्ध होकर हाथ अपने
ह गगन की ओर फैलाए, वसाए
आख म सतरग सपने ।
एक वे है, जो कि अपनी साधना से
पक से ऊपर उठे ह,
एक तू है, पख अपना नीच कीचड
म फँसाने जा रहा है ।

सुर सरोवर नीर-नहलाए परों को
किस तरफ फैला रहा है ?

और यह मत भूल तूने इस जगत में
क्या बड़ा सम्मान पाया !
कुंद इंदु-तुषार हार-धवल गिरा ने
है तुझे वाहन बनाया।
मोतियों का जो करे आहार, खाने
के लिए कतवार, टूटे !
सोच, तेरे साथ तेरे देवता पर
दाग लगने जा रहा है।
सुर सरोवर नीर-नहलाए परों को
किस तरफ फैला रहा है ?

वह मिली सत्ता तुझे, तू याद आए
जब सजाए प्रात प्राची,
वह महत्ता, याय और विवेक का तू
बन गया पर्यायवाची,
वह मिला व्यक्तित्व तुझको जो कि सागर
बीच उतराए समुज्ज्वल,
चेत हंस कुमार, डाबर है कि जिसमें
डूबने तू जा रहा है।
सुर सरोवर नीर नहलाए परों को
किस तरफ फैला रहा है ?

७३

सुर सरोवर नीर नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

सूर्य-शशि के वंश में पैदा हुआ तू,
कीर्ति जिनकी जग उजागर,
धाम तेरा तीर्थ, जिसको अनगिनत जन
हैं गए माथा झुकाकर,
हिम शिखर की स्वच्छ औ' पावन हवा ने
है जिन्हें उडना सिखाया,
सुर सरोवर नीर नहलाए परो को
किस तरफ फैला रहा है ?

देख अपने साथियो को जो धरा से
बद्ध होकर हाथ अपने
है गगन की ओर फैलाए, बसाए
आंख मे सतरंग सपने ।
एक वे है, जो कि अपनी साधना से
पंक से ऊपर उठे है,
एक तू है, पर अपना नीच कीचड
मे फँसाने जा रहा है ।

सुर सरोवर नीर-नहलाए परों को
किस तरफ फैला रहा है ?

और यह मत भूल तूने इस जगत में
क्या बड़ा सम्मान पाया !
कुंद इंदु-तुषार हार-धवल गिरा ने
है तुझे वाहन बनाया।
मोतियों का जो करे आहार, खाने
के लिए कतवार, टूटे!
सोच, तेरे साथ तेरे देवता पर
दाग लगने जा रहा है।
सुर सरोवर नीर-नहलाए परों को
किस तरफ फैला रहा है ?

वह मिली सत्ता तुझे, तू याद आए
जब सजाए प्रात प्राची,
वह महत्ता, न्याय और विवेक का तू
बन गया पर्यायवाची,
वह मिला व्यक्तित्व तुझको जो कि सागर
बीच उतराए समुज्ज्वल,
श्वेत हंस कुमार, डाबर है कि जिसमें
डूबने तू जा रहा है।
सुर सरोवर नीर नहलाए परों को
किस तरफ फैला रहा है ?

७४

ग्राज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

ग्राज पथ मे साथ जो होगा
सगा भाई बनेगा,
हाल भर जो पूछ लेगा
स्वग-सुखदायी बनेगा,
जो चुभा, उसको कहूँगा
पद पकडकर हे विठाता,
ग्राज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

हा, कभी ससार, जीवन,
काल से ग्राशा वडी थी,
एक गज को नापने को
एक योजन की छडी थी,
तव निराशा ग्रांख फाडे
हर दिशा से देखती थी,
ग्रौर था ग्रभिशाप ही ग्रभिशाप हर वरदान मुझपर।
ग्राज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

स्वप्नमाती पुतलियो ने
सत्य को कूडा समझकर

है हजारों बार फेंका
घूर पर, गंदी जगह पर,
फाड़ कितने गीत डाले
रद्दियों की टोकरी में,
औ' बना प्रश्न पुराना, सृष्टि का नव गान मुझपर।
आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

पर न जाने कब लगा, यह
स्वप्न है अभिमान मेरा,
मैं स्वयं कितने अभावों
औ' कुभावों का बसेरा,
यह मनुजता, यह प्रकृति
मुझको लगी कहने सहोदर,
फल-सा लगने लगा जो था कभी पाषाण मुझपर।
आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

अब नहीं संग में प्रणय के
चाहिए बलिदान मुझको,
आज तो अभिभूत करने
को बहुत मुसकान मुझको,
आज करुणा के दृगों से
देखता कोई मुझे तो,
मैं समझता हूँ कि नजरें डालता भगवान मुझपर।
आज हूँ ऐसा कि कर लो तुम सहज एहसान मुझपर।

७५

आज तुम घायल मृगी-सी आ रही हो,
मैं न खोलू द्वार कैसे !
एक दिन घायल हरिण-सा मैं तुम्हारे
द्वार पर आया हुआ था,
श्वेत सरसिज-पखुरी सी उँगलियो से,
पर, नही तुमने छुआ था,
घाव तो भरता समय, सवेदनाएँ
भाव पर मरहम लगाती,
आज तुम घायल मृगी सी आ रही हो,
मैं न खोलू द्वार कैसे !

मैं अचानक ही भयानक जग-अरण्यक
मे विचरता आ गया था,
किंतु उसकी नीति-रीति न जानता था
एकदम भोला, नया था,
एक अनजानी दिशा से तीर आया,
बिंध गया, मै छटपटाया,
क्रूरता इतनी जहा पर है, न होगा
उस जगह पर प्यार कैसे !

आज तुम घायल मृगी-सी आ रही हो,
मै न खोलूं द्वार कैसे!

और जब तुमने न पूछी बात, समझा
मैं कि धोखा खा रहा हूँ,
जिन कपाटो पर कडे जदरे जडे हैं
मैं उन्हें खडका रहा हूँ,
और अब मैं जानता हूँ वे किसीकी
चोट से ही टूटते हैं,
जिस किसीने चोट पर चोटें सही हो,
वह बनेगा मर्द परदेदार कैसे!
आज तुम घायल मृगी-सी आ रही हो,
मैं न खोलूं द्वार कैसे!

स्वागतम् सबको सुनाकर कह रहा हूँ,
स्नेह लो, सवेदना लो,
हाथ मेरा दाग से डरता नही है,
रक्त की धारा धुला लो,
यह समय का तीर लगता है सभी को,
शुक्रिया इसके लिए है,
कर गया मानव मुझे जो, मैं न उसका
मानता आभार कैसे!
आज तुम घायल मृगी सी आ रही हो,
मै न खोलूँ द्वार कैसे!

ओ' न अपना दोष देखो, औ' न मेरा
गुण सराहो, आर्द्रनयने,
तीर तुमको ही प्रथम लगता अगर तो
मैं न करता, आन वयने,
ठीक वैसा ही कि तुमने जो किया था?
जानता कोई नहीं है—
कब, कहा पर, कौन पोछेगा, किसीके
आंसुओं की धार, कैसे!
आज तुम घायल मृगी सी आ रही हो,
मैं न खोलूं द्वार कैसे!

७६

साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

जब कहा मैंने कि है यह शुक्र जो
वेला विदा की पास आई,
कुछ तअज्जुब, कुछ उदासी, कुछ शरारत
से भरी तुम मुसकराई,
वक्त के डैन चले, तुम हो वहा, मै
हूँ यहा, पर देखता हूँ,
साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

स्वप्न का वातावरण हर चीज के
चारो तरफ मानव बनाता,
लाख कविता से, कला से पुष्ट करता,
अत मे वह टूट जाता,
सत्य को हर शक्ल खुलकर आख के
अदर निराशा झोकती है,
और वह धुलती नही है ज्ञान जल से,
दशनो से, मरमिटे इमान धोता।

साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहंसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

शीर्ष आसन से रुधिर की चाल रोको,
पर समय की गति न थमती।
औ' खिज़ाबोरंग-रोगन पर जवानी
है न ज़्यादा दिन विलमती,
सिद्ध यह करते हुए जाते अगिनती,
द्वार खोलो और देखो,
और इस दयनीय मुख के काफ़ले में
जो न होता सुबह को, वह शाम होता।
साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहंसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

एक दिन है, जब तुम्हारे कुंतलों से
नागिनें लहरा रही हैं,
और मेरी तनतनाई बीन से ध्वनि-
राग की धारा बही है,
और तुम जो बोलती हो, बोलता मैं,
गीत उसपर शीश धुनता,
और दृग संगीत-प्रीति समुद्र जल में
काल जैसे छिप गया है मार गोता।
साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहंसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

श्रौर यह तस्वीर कैसी, नागिनें सब
केचुलो का रूप धरती,
औ' हमे जब घेरता है मौन उसको
सिर्फ सांसो भग करती,
औ' घरेलू कण कटु झगड़े-बखेड़ो
को पडोसी सुन रहे हैं,
श्रौर बेटो ने नही है खर्च भेजा,
श्रौर हमको मुंह चिढाता ढीठ पोता।
साथ भी रखता तुम्हे तो, राजहंसिनि,
क्या हमारे प्यार का परिणाम होता!

७७

धरती को फाड वहार निकल आई वाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलाषाएँ।

कुहरे को फाड प्रकाश निकल आया वाहर,
बादल को फाड समीर सहज गतिवान हुआ,
डालो की छाले फाड निकल आए पल्लव,
जल का तल फाड सरोरुह रवि-छविमान हुआ,

जो मिट्टी कल काली, गीली, तृणक्षीणा थी,
रगीनी उसके ऊपर आज निसार हुई,
धरती को फाड वहार निकल आई वाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलाषाएँ।

जो धूल-धुआरा नभ था, नीलाकाश हुआ,
जो हवा काटती थी, सहलाती गालो को,
जो शाख डराती थी, आखो को भाती हैं,
पकज आमत्रण देता राज-मरालो को

मैंने तो अपने वचपन से यह देखा था
पहले पौधा वढता, फिर फूल निकलता है,
जव फोड धरा को फल निकल आएँ पहले,
क्यो कोई आँखें फाड न मुह को फैलाए।

धरती को फाड बहार निकल आई बाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलाषाएँ।

हर पेड हरा, हरियाली की सौ किस्म है,
हर फूल रँगीला है अपनी ही रगत मे,
हल्का गहरा होकर सौ है हर एक रग,
होता हजार दूसरे रग की सगत मे,
आँख रगो के मेले से परितृप्त हुई,
मेरी पूरब की नाक खोजती खुशबू भी,
वह यहा नही, इस वक्त रात की रानी,
चपा, मेहदी की क्यो याद न मुझको तडपाए।
धरती को फाड बहार निकल आई बाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलाषाएँ।

हो गध न इनमे, लेकिन रस तो होता है
वरना भौरा कैसे लिपटा-चिपटा रहता,
हो पडे किसी भी तरवर के नीचे जाकर
ऊपर से चिडिया के स्वर का झरना बहता,
हल्के-झीने परिधान पहन गौरागिनियाँ
बैठी लेटी प्रियतम को लेकर लानो मे,
हम परदेसी कमरे म बैठ न गीत लिखे,
तो किस गोशे मे जा अपने को बहलाएँ।
धरती को फाड बहार निकल आई बाहर,
अदर घुटती मेरे मन की अभिलाषाएँ।

७८

बौरे आमों पर बौराए भौर न आए, कैसे समझू मधुऋतु आई।
माना अब आकाश खुला सा और धुला सा,
फैला-फैला, नीला नीला,
बर्फ-जली-सी, पीली-पीली दूब हरी फिर,
जिसपर खिलता फूल फबीला,
तरु की निरावरण डालों पर मूँगा, पन्ना
औ' दखिनहटे का झकझोरा,
बौरे आमों पर बौराए भौर न आए, कैसे समझू मधुऋतु आई।

माना, गाना गानेवाली चिड़िया आई,
सुन पड़ती कोकिल की बोली,
चली गई थी गर्म प्रदेशों मे कुछ दिन को
जो, लौटी हंसा की टोली,
सजी-बजी बारात खड़ी है रंग बिरंगी,
किंतु न दूल्हे के सिर जब तक
मंजरियों का मौर मुकुट कोई पहनाए, कैसे समझू मधुऋतु आई।
बौरे आमों पर बौराए भौर न आए, कैसे समझू मधुऋतु आई।

डार-पात सब पीत पुष्पमय जो कर लेता
अमलतास को कौन छिपाए,
सेमल और पलाशो ने सिदूर-पताके
नही गगन म क्या फहराए ?
छोड नगर की सँकरी गलिया, घर-दर, बाहर
आया, पर फली सरसो से
मीलो लबे खेत नही दिखते पियराए, कैसे समझू मधुऋतु आई।
बौरे आमो पर बौराए भौर न आए, कैसे समझू मधुऋतु आई।

प्रात से सध्या तक पशुवत मेहनत करके
चूर-चूर हो जाने पर भी,
एक बार भी तीन सैकडे पैसठ दिन म
पूरा पेट न खाने पर भी,
मौसम की मदमस्त हवा पी जो हो उठते
है मतवाले, पागल, उनके
फाग-राग ने रातो रक्खा नही जगाए, कैसे समझू मधुऋतु आई।
बौरे आमो पर बौराए भौर न आए, कसे समझू मधुऋतु आई।

७६

धरती म सोए फूल, कली फिर जागो !

नील गगन से मग्न उतरती
नग्न किरण की माला,
अब उतार कर फेंको तुम भी
तन से हिम का गाला,

शीत चुका है बीत, वसती
निकला पुन सबेरा,
धरती म सोए फूल, कली फिर जागो !

आखो ने देखी फिर तरुवर
की शाखे अखुआई,
हवा दखिनही घूम रही है
भरमाई, भरमाई,

उसके चुवन से झडती है
मणि मरकत की लडियाँ,
तुम भी अपना वरदान उठो अब मागो।
धरती म सोए फूल, कली फिर जागो !

भ्रमरो के होठो मे जागी
फिर से प्यास पुरानी,
पर कच्ची कलि के अधरो से
क्या पाते वे ? पानी।

समय विकसने, मधु, पराग से
भरने मे लगता है,
सयम से लो कुछ काम, अधीर, अभागो।
धरती मे सोए फूल, कली फिर जागो।

मैंने अपनी बीन सँभाली,
तार कसे सब ढीले,
सुरा सुरो की खीचो, जिसको
पीनी हो वह पी ले,

हाथ नशीले और उँगलिया—
रस म भीगी-भीगी,
प्राणो मे गूजो फिर, प्रणयी के रागो।
धरती मे सोए फूल, कली फिर जागो।

८०

अब दिन बदले, घडिया बदली,
साजन आए, सावन आया।

धरती की जलती सासो ने
मेरी सासो मे ताप भरा,
सरसी की छाती दरकी तो
कर घाव गई मुझपर गहरा,
है नियति प्रकृति की ऋतुओ मे
सबध कही कुछ अनजाना,
अब दिन बदले, घडिया बदली,
साजन आए, सावन आया।

तूफान उठा जब अबर मे
अतर किसने झकझोर दिया,
मन के सौ बद कपाटो को
क्षण भर के अदर खोल दिया,
झोका जब आया मधुवन मे
प्रिय का सदेश लिए आया—
ऐसी निकली ही धूप नही
जो साथ नही लाई छाया।

अब दिन वदले, घडियाँ वदलीं,
साजन आए, सावन आया।

न के आगन से विजली ने
व नयनो से सकेत किया,
मेरी वे होश हवास पडी
आशा ने फिर से चेत किया,
मुरझाती लतिका पर कोई
जैसे पानी के छीटे दे,
औ' फिर जीवन की सासे ले
उसकी मृयमाण जली काया।
अव दिन वदले, घडिया वदली।
साजन आए, सावन आया।

रोमाच हुआ जब अवनी का
रोमाचित मेरे अग हुए,
जैसे जादू की लकडी से
कोई दोनो को सग छुए,
सिंचित सा कठ पपीहे का,
कोयल की वोली भीगी सी,
रस-डूवा, स्वर म उतराया
यह गीत नया मैंने गाया।
अव दिन वदले, घडिया वदली,
साजन आए, सावन आया।

८१

मै सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नही है।

जिसने कलियो के अधरो मे
रस रक्खा पहले शरमाए,
जिसने अलियो के पखो मे
प्यास भरी वह सिर लटकाए,

आख करे वह नीची जिसने
यौवन का उन्माद उभारा,

मै सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नही है।

मन मे सावन-भादो बरसे,
जीभ करे, पर, पानी-पानी।
चलती-फलती है दुनिया म
बहुधा ऐसी बेईमानी,

पूवज मेरे, किंतु, हृदय की
सच्चाई पर मिटत आए,

मधुवन भोगे, मरु उपदेशे मेरे वश रिवाज नही है।
मै सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नही है।

चला सफर पर जब तब मैने
पथ पूछा अपने अनुभव से,
अपनी एक भूल से सीखा
ज्यादा, औरो के सच सौ से,

मैं बोला जो मेरी नाडी
म डोला, जो रग म घूमा,

मेरी वाणी आज किताबी नक्शो की मोहताज नही है।
मैं सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नही है।

अधरामृत की उस तह तक मैं
पहुँचा विष को भी चख आया,
और गया सुख को पिछुआता
पीर जहा वह बनकर छाया,

मृत्यु गोद मे जीवन अपनी
अंतिम सीमा पर लेटा था,

राग जहा पर तीव्र अधिकतम है, उसमे आवाज़ नही है।
मैं सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नही है।

८२

मैं तुम्हारा स्नेह, सवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नही उस दाम पर जो मागते तुम।

स्नेह, सवेदन, समादर की जरूरत,
कौन ऐसा है, नही महसूस करता,
और कुछ सौभाग्यशाली है कि जिनपर
यह सुखद झरना अचानक फूट पडता,

किंतु मैं हर वूद की कीमत अदा कर चाहता हूँ
लू पलक पर, या अधर पर, या वदन पर,
मै तुम्हारा स्नेह, सवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नही उस दाम पर जो मागते तुम।

ओ' तुम्हारे घर नही जल की कमी है,
पर तुम्हारे अर्घ्य की तव धार वहती,
जव नगर-घर खाक हो जाता किसीका,
जव किसीके सिर न तृण की छाह रहती,

ओ' तुम्हारे अघ्य म कितना प्रलोभन
है कि कुछ घर फूक खुद वनते तमाशा,

और जो है आग से संघर्ष करते, होड़ लेते
भूल करके भी न उनको ताकते तुम।
मैं तुम्हारा स्नेह, संवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नहीं उस दाम पर जो माँगते तुम।

औ' तुम्हारे घर न दीपों की कमी है,
पर तुम्हारी आरती तब है सँवरती,
जब किसीके नेत्र-दिल के दीप बुझते,
जब किसीपर रात अँधियारी उतरती,
औ' तुम्हारी आरती में क्या प्रलोभन
है कि कुछ अपने दिए खुद ही बुझाते,
और जो तम को झगड़-लड़ चूर करते,दूर करते
भूल करके भी न उनको ताकते तुम।
मैं तुम्हारा स्नेह, संवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नहीं उस दाम पर जो माँगते तुम।

सब समझ मैंने लिया, तुमको नहीं है
खोज उनकी जो कि अधिकारी बने हैं,
स्नेह, संवदन, समादर के, तुम्हें तो
खोज उनकी जो कि लाचारी बने हैं,
जिंदगी की, वक्त की, जिनको कि करुणा
का बनाकर पात्र तुम यश-पुण्य लूटो।
खैरियत है, युद्ध मेरे अग्नि-ज्वाला
से, अँधेरे से, जमाने से ठने हैं।

स्नेह सवेदन-समादरणीय बन पाऊँ, न पाऊ,
मै नही दयनीय बनना चाहता हूँ,
साफसौदा यह नही,गपनी दया का मूल्य ज्यादा
और मेरे मान का कम आकते तुम।
मैं तुम्हारा स्नेह, सवेदन, समादर चाहता हूँ,
पर नही उस दाम पर जो मांगते तुम।

यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान तू सकता नही है ।

यह कमल की पूर्ण सत्ता
का बडा बारीक सत है,
गानरत की प्राण-ध्वनि है,
या किसी कवि का कवित्त है,
या कि विरही यक्ष का उच्छ्वास
जिससे मेघदूत प्रसूत होता,
या निमत्रण यक्षिणी का
मौन बैठी जो कि अलका मे कही है ।
यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान तू सकता नही है ।

और सुनता यह निमत्रण,
और गिरि वन खड करता
पार, आता, गुनगुनाता,
और पकज मे समाता,
नाक तुझको, सूघने की
सूक्ष्मता तुझमे कहा, कीचड-विहारी,
कीट-भक्षी जीभ से मकरद-
मधु को छान तू सकता नही है।
यह कमल का वास है, दादुर,
इसे पहचान तू सकता नही है ।

दर्द भुगतने वालों की भी
हमदर्दी को देख चुका हूँ,
मत मेरा मुंह खुलवाओ, मैं
भीतर भीतर बहुत फुंका हूँ,
अब दरकार नहीं है उसको,
काफी मैं एहसान तुम्हारा
मानूंगा, अपने हंसने की वस्तु न जो मुझको मानोगे।
लाख देवता तुम हो, मेरी, किंतु, वेदना क्या जानोगे।

नहीं मुझे मालूम कि मेरी
सांसों का यह जो दो-तारा,
इसको कसकर झंकृत करने
मे कितना है हाथ तुम्हारा,
है तो, मेरे एक प्रश्न का
उत्तर दे सकते हो ? पूछूं ?
मेरे जीवन की वीणा को और अभी कितना तानोगे ?
लाख देवता तुम हो, मेरी, किंतु, वेदना क्या जानोगे।

८५

मैं सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ !
कामना कुछ प्राप्त करने की हुई तो
प्रथम अधिकारी बना हूँ,
और फिर मैं काल के, ससार के, औ'
भाग्य के आगे तना हूँ,
मैं वहाँ झुककर जहाँ झुकना गलत है,
स्वग ले सकता नही हूँ,
मै सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ !

झूठ बुलवाए न जिह्वा, सर्वदा मैंने
नही है न्याय पाया,
और थोडी सी अकड से, जानता हूँ,
जो न पाया, जो गँवाया,
योग्यता की पोल म क्या चीज भरकर
कुछ उसे सीधी किए हैं,
रीढ ही जो तोड बैठे होड क्या उनसे लगाऊँ!
मैं सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ!

वे कहेंगे क्या, न जिसको साँस मेरी
रात दिन कहती रही है,
झूठ मेरे प्राण की ध्वनि, और उनकी
जीभ की चुलबुल सही है,
जबकि मेरे बोल खुद कहते नहीं हैं
वे हृदय से फूटते हैं,
सिद्ध करने को इसे क्या और से कसमें खिलाऊँ।
मैं सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ।

और जब उनकी प्रतिध्वनि ही तुम्हारे
बोल से आती नहीं है,
तो मुझे यह जान लेना चाहिए था
हो रही गलती कहीं है,
घाटियाँ आवाज पर आवाज देती
और गलियाँ मौन रहती,
चल, अभागे मन, कहीं अब और मैं तुझको रमाऊँ।
मैं सिफारिश से तुम्हारा प्यार पाऊँ, तो न पाऊँ।

८६

मै सदा ससार मे लडता रहा हूँ,
वस यही है हार मुझको, जीत मुझको।
हूँ नही उन धाकड़ा मे जो कि अपनी
चाक पर जग को चलाकर हैं बिठाते
धाक अपनी, औ' न उनमे जो जगत के
हुक्मनामा पर ठहरते, पग बढाते,
जो खडे होकर तमाशा देखते हैं,
पूछते हैं क्या हुआ इसका नतीजा,
मैं सदा ससार से लडता रहा हूँ,
वस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

बाध जो बदूक औ' तलवार फिरते,
वस उन्हे दुनिया सिपाही मानती है,
किंतु बे-हथियार के जो जग करते
ढग उनका वह कहाँ पहचानती है,
युद्ध करते सकडा यो मौन रहकर
और उनका घाव, उनकी चोट, पीडा
जानता कोई नही उनके अलावा,
कुछ मुखरने को मिला है गीत मुझको।

मैं सदा संसार से लड़ता रहा हूँ,
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

एक दुनिया है हृदय के बीच मे भी
जो किसीको भी नही देती दिखाई,
और इसको जानता कोई नही है
जिस तरह मैंने वहा पर की लड़ाई,
जो वहाँ पहनी फतह की फ़ूलमाला,
जो वहा गिरकर धरा की धूल—चाटी,
है मुझे फूला नही देखा विजय ने
औ' पराजय ने नही, भय-पीत मुझको।
मैं सदा संसार से लड़ता रहा हूँ,
बस यही है हार मुझको,जीत मुझको।

कौन कहता है कि आधी रात को मै
बैठ शब्दो के तुको को जोड़ता हूँ,
भावना के भेद को जो हैं दबाए
सत्य मे, उन पत्थरो को तोड़ता हूँ,
आग निकले या कि जल की धार निकले,
राग मधुमय या करुण चीत्कार निकले,
चीर कर जो सग की छाती निकलती
है विकलता, बस वही संगीत मुझको।
मैं सदा संसार से लड़ता रहा हूँ,
बस यही है हार मुझको, जीत मुझको।

और, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे-गँभीरे।
आसमानी इस प्रलोभन मे, वता तो,
क्या अनोखा, क्या नया है,
जो कि इसको लोकने को लोभियो का
आज मेला जुड गया है,
छोड इनसे, जोड इनके साथ करने
की नही तुझको जरूरत,
और, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे-गँभीरे।

है बडा अचरज कि नर ने किस तरह फिर
वानरी आकार पाया,
रीढ जो थी की गई सीधी, मनुज ने
किस तरह उसको झुकाया,
आज तू अपवाद बनकर वैठ जिससे
सिद्ध फिर ससार मे हो,
फिर पडी होती नही है जो कि अपने
से खडी होती लकीरें।

और, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे-गँभीरे !

और ये जितने उछलते कूदते हैं
क्या सभी कुछ पा रहे है ?
कुछ न पाएं, पर जमाने की नजर मे
तो उभरते आ रहे हैं,
जो कि अपने को दिखाते घूमते हैं,
देखते खुद को कहा है,
और खुद को देखनेवाली नजर
नीचे सदा रहती गडी, रे !
और, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे गँभीरे !

और इस हल्की हवा फुल्की सतह पर
दीखता उडता हुआ जो,
या कि है कीडा मकोडा, या कि रजकरण,
या कि जो तिनका, भुआ जो,
दांत से इनको पकडकर कुछ बडे खुश
हो रहे हैं, पर तुझे तो
सिर्फ लेना है अतल गहराइयो से
ठीकरे हो या कि हीरे !
और, जो ऊँचे उचकते, स्वाभिमानी,
पैठ तू गहरे-गँभीरे !

८८

तेरे मन की पीर ओसकण समझेंगे, न कि तारे।
नीलम-नील महल के ऊपर
मणि-दीपों की माला,
गया अखर कर क्या तुझपर भी
वैभव का उजियाला।

अतर आभावाले, तेरी
क़द्र वहाँपर क्या है।
नीचे का पानी रस, रस के अंदर अमृत धारे।
तेरे मन का मोल ओसकण समझेंगे, न कि तारे।
उच्चासन आसीन भले ही
तुझे दुआएँ दे लें,
गो ज्यादा संभव है तेरी
किस्मत से वे खेलें,

ताज पिन्हा दें तो भी, होगा
ठुकराई किरणों का,
जल की बूँद प्रतीक्षा में है, तेरे पाँव पखारे।
तेरे मन का मान ओसकण समझेंगे, न कि तारे।
जड़ता के इस चाकचक्य पर
आँख सभी की जाती,

किंतु किसीने इसके पीछे
सुनी धड़कती छाती ?

यह पानी की बूंद पखुरियों
की सांसो पर हिलती,
यह अपनी पुतली मे सारे नभ का दर्द सँवारे।
तेरे मन का भार ओसकरण समझेंगे, न कि तारे।

चमक-दमक या तड़क-भड़क को
समझ न अतर्ज्वाला,
नहीं हुआ करता हर जलने-
वाला गलनेवाला,

गले ढले ही जले हुओं की
पीर परख पाते हैं,
इन जल तन वालो ने जाने हैं मन के अगारे।
तेरे मन का ताप ओसकरण समझेंगे, न कि तारे।

आदि काल से पृथ्वी का दुख-
ताप उन्होने देखा,
किन्तु नही उनके आनन पर
पड़ी एक भी रेखा,

इन बूदो पर एक-एक क्षरण-
करण की कसक सिसकती,
व्यथा-कथा ससृति की छूते इनके कोर-किनारे।
तेरे मन की पीर ओसकरण समझेंगे, न कि तारे।

८६

तारों का सारा नभ-मंडल, आँसू का नयनों का घेरा।

एक दिवस यह आज़ादी थी—
जल-कण लूँ, या रत्न गगन का
क्षण न लगा मुझको निर्णय में,
मालिक था मैं अपने मन का,
अपना भाग्य चुना जब मैंने
तब भी यह मालूम मुझे था—
तारों का सारा नभ-मंडल, आँसू का नयनों का घेरा।

ठीक पसंद सदा थी मेरी—
कब मैंने दावा दिखलाया,
एक बड़ी सूची है उनकी
जिनको अपनाकर पछताया,
फूलों के ऊपर भी आया,
शूलों के ऊपर भी आया,
किंतु कभी भी अब तक मैंने आँसू का उपहार न फेरा।
तारों का सारा नभ-मंडल, आँसू का नयनों का घेरा।

तारो की आभा म ऐंठा
वठा लगता है अभिमानी,
आखो के पानी मे झलका
करती जग की दद-कहानी,
एक बूद से भी दुनिया का
ताप वहुत कुछ मिट जाता है,
लाखो तारे कर पाते है किसके घर का दूर अँधेरा।
तारो का सारा नभ-मडल, आसू का नयनो का घेरा।

पलको के भरते ही अतर
लेने लगता है हलकोरे,
अतर के हलकोरो ने ही
वे सब कूल कगारे तोडे,
वोरे, जो मानव-मानव के
वोच बनाते है सीमाएँ,
और उन्हीके ऊपर चलता आया है भावो का वेडा।
तारो का सारा नभ मडल, आसू का नयनो का घेरा।

९०

उम्र ही मेरी चुकी है बीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।
शाप मेरा था बडा सबसे, कि अपने
साथ मैं था स्वप्न लाया,
और बिगडी आदता की आँख को जब
सत्य जगती का न भाया,

तब सिवा विद्रोह करने के नही था
और कोई पास चारा,
उम्र ही मेरी चुकी है बीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।
औ' ग़लत या ठीक समझो, अस्त्र अपना
शब्द को मैंने चुना था,
क्रांतिकारी, पूर्व मेरे भी, इसीसे
लड चुके थे, यह सुना था,

तब नही था ज्ञान इनपर शान रखने
की हुआ करती ज़रूरत,
धार इनको दे वही पाते इन्हे जो है कलेजे से रगडते।
उम्र ही मेरी चुकी है बीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।

ग्रौर मेरे साथ वहुतो ने शुरू की
थी ज़माने से लडाई,
किंतु उनकी ही ज़वाने गा रही है
ग्राज उसकी गुण-वडाई,
ग्रौर मै ससार से ग्रारभ करके
साथ ग्रपने लड रहा हूँ,
दो विरोधी शत्रु मुझमे सवदा से है रहे दवते-उभरते।
उम्र ही मेरी चुकी है बीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।

हूँ न उनमे जो उदर के ग्रौ' कमर के
वीच मे मस्तिष्क पाए,
ग्रौ' न उनमे, जो कि दुनिया से परे हो
इश्क मस्ताना लगाए,
ग्रादमी हूँ, दम्भ इसका है, वना हूँ
देवता-पशु का रणस्थल,
ग्रौर तै है श्वान करते सधि जीवन से कि पहुँचे सत करते।
उम्र ही मेरी चुकी है वीत जीवन-विश्व से लडते-झगडते।

६१

गूंजा करते है जो तेरे अंतर्मन मे,
उनमे कोई क्या भीना स्वर मेरा भी है ?
निर्जन पर्वत पर बहनेवाला निर्झर जो
सगीत शिलाखडो के बीच सुनाता है,
वह इसे पूछने को कब रमता-थमता है,
कोई उसको सुनता-गुनता, अपनाता है,
'स्वांत सुखाय', फिर, तुलसी गाया करते हैं,
मुझसे तो यह साधना वरी जा सकी नही,
इतनी जडता के ऊपर, इतनी चेतनता
के नीचे, मुझको प्रश्न सदा अकुलाता है—
गूंजा करते हैं जो तेरे अंतर्मन मे,
उनमे कोई क्या भीना स्वर मेरा भी है ?
पर्वत, घाटी, सरिता के तट से, खँडहर से
मेरे रागो की प्रतिध्वनियाँ तो आती हैं,
दर्पण में दिखलाई पडनेवाली छाया
किसके तन का एकाकीपन हर पाती है ?
हूबहू नकल करके वे मेरे लहजो का
उपहास नही करती हैं, तो क्या करती हैं ?

जो उनके उत्तर म उभरे, सिहरे, धडके,
मै पूछ रहा हूँ, क्या ऐसी भी छाती है ?
जो तू दुहराती कडी अकेली साझी को,
उनमे कोई टूटा आखर मेरा भी है ?
गूजा करते हैं जो तेरे अतमन मे,
उनम कोई क्या झीना स्वर मेरा भी है ?

कितनो ने अपने मन के महल ढहाए हैं
तेरा राजप्रासाद खडा हो अवर म,
कितनो ने अपने घर के दीप बुझाए हैं
जगमग-जगमग हर कोना हो तेरे घर मे,
कितनो ने अपने जी के बाग उजाडे हैं
फूलो से तेरी सेज सजे सतखडे पर,
मेरी सारी पूजी कुछ मुखरित सपने थे,
अपनी तनहाई की अलसाई भुरहर[1] मे
तू याद जगा जिनकी अँगडाई लेती है,
उनमे कोई सोया खडहर मेरा भी है ?
गूजा करते है जो तेरे अतमन मे,
उनम कोई क्या झीना स्वर मेरा भी है ?

---

[1] (अवधी) भोर, सुबह।

९२

माना मैंने मिट्टी, कंकड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मै बाज़ रहा।
दर्पण से अपनी चापलूसियाँ सुनने की
सबको होती है, मुझको भी कमजोरी थी,
लेकिन तब मेरी कच्ची गदहपचीसी थी,
तन कोरा था, मन भोला था, मति भोरी थी,
है धन्यवाद सौ बार विधाता का जिसने
दुर्बलता मेरे साथ लगा दी एक और,
माना मैंने मिट्टी, कंकड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मैं बाज रहा।

धरती से लेकर, जिसपर तिनके की चादर,
अंबर तक, जिसके मस्तक पर मणि-पाती है,
जो है, सबमे मेरी दयमारी आँखो को
मय करनेवाली कुछ बातें मिल जाती है,
खुलकर, छिपकर जो कुछ मेरे आगे पडता
मेरे मन का कुछ हिस्सा लेकर जाता है,
इस लाचारी से लुटने और उजडनेवाली
हस्ती पर मुझको हर लमहा नाज रहा।

माना मैंने मिट्टी, ककड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मै बाज़ रहा।

यह पूजा की भावना प्रवल है मानव मे,
इसका कोई आधार बनाना पडता है,
जो मूर्ति और की नही बिठाता है अदर,
उसको खुद अपना बुत बिठलाना पडता है,
यह सत्य, कल्पतरु के अभाव मे रेंड सीच
मैंने अपने मन का उद्गार निकाला है,
लेकिन एकाकी से एकाकी घडियो मे
मैं कभी नही बनकर अपना मोहताज रहा।
माना मैंने मिट्टी, ककड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मै बाज रहा।

अब इतने ईंटे, ककड, पत्थर बैठ चुके,
वह दर्पण टूटा, फूटा, चकनाचूर हुआ,
लेकिन मुझको इसका कोई पछतावा नही
जो उनके प्रति ससार सदा ही क्रूर हुआ,
कुछ चीजे खडित होकर साबित होती हैं,
जो चीजें मुझको साबित साबित करती है,
उनके ही गुण तो गाता मेरा कठ रहा,
उनकी ही धुन पर बजता मेरा साज़ रहा।
माना मैंने मिट्टी, ककड, पत्थर पूजा,
अपनी पूजा करने से तो मै बाज़ रहा।

९३

दे मन का उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।
लहराया है दिल तो ललका
जा मधुवन में, मैदानों में,
बहुत बड़े वरदान छिपे हैं
तान, तराना, मुसकानों में,
घबराया है जी तो मुड़ जा
सूने मठ, नीरव घाटों में,
दे मन का उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।

किसके सिर का बोझा कम है
जो औरों का बोझ बँटाए,
होठों के सतही शब्दों से
दो तिनके भी कब हट पाए,
लाख जीभ में एक हृदय की
गहराई को छू पाती है,
कटती है हर एक मुसीबत—एक तरह बस—झेले झेले।
दे मन का उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।

छुटकारा तुमने पाया है,
पूछूं तो, क्या कीमत देकर,
कर्ज चुका आए तुम अपना,
लेकिन मुझको ज्ञात कि लेकर
दया किसीकी, कृपा किसीकी,
भीख किसीकी, दान किसीका,
तुमसे सौ दर्जे अच्छे वे जो अपने बंधन से खेले।
दे मन का उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।

जंजीरों की झनकारों से
हैं वीणा के तार लजाते,
जीवन के गंभीर स्वरों को
केवल भारी हैं सुन पाते,
गान उन्हींका मान जिन्हें है
मानव के दुख-दर्द-दहन का,
गीत वही बांटेगा सबको, जो दुनिया की पीर सके ले।
दे मनका उपहार सभीको, ले चल मन का भार अकेले।

९४

मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

वह पट ले आई, बोली, देखो एक तरफ,
जीवन-ऊषा की लाल किरण, बहता पानी,
उगता तरुवर, खर चोंच दबा उड़ता पंछी,
छूता अंबर को धरती का अंचल धानी,
दूसरी तरफ है मृत्यु-मरुस्थल की संध्या
में राख धुएँ में धँसा हुआ कंकाल पड़ा।
मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

ऊषा की किरणों से कंचन की वृष्टि हुई,
बहते पानी मे मदिरा की लहरे आई,
उगते तरुवर की छाया मे प्रेमी लेटे,
विहगावलि ने नभ मे मुखरित की शहनाई,
अंबर धरती के ऊपर बन आशीष झुका
मानव ने अपने सुख-दुख मे, संघर्षों मे,
अपनी मिट्टी की काया पर अभिमान किया।
मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

मैं कभी, कहीं पर सफर खत्म कर देने को
तैयार सदा था, इसमे भी थी क्या मुश्किल,
चलना ही जिसका काम रहा हो दुनिया मे
हर एक कदम के ऊपर है उसकी मंजिल,
जो कल पर काम उठाता हो वह पछताए,
कल अगर नही फिर उसकी किस्मत म आता,
मैंने कल पर कब आज भला बलिदान किया।
मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

काली, काले केशो मे काला कमल सजा,
काली सारी पहने चुपके-चुपके आई,
मैं उज्ज्वल-मुख, उजले वस्त्रो मे बैठा था
सुस्ताने को, पथ पर थी उजियाली छायी,
'तुम कौन ? मौत ? मै जीने की ही जोग-जुगत
म लगा रहा।' बोली, 'मत घबरा, स्वागत का
मेरे, तूने सबसे अच्छा सामान किया।'
मैंने जीवन देखा, जीवन का गान किया।

९५

ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोड़े जाता हूँ।

था ज्ञात मुझे भी, तुझको भी
आया हूँ जाने को,
कुछ वक्त मिला था मुझको गाने,
गीत सुनाने को,
कुछ अपने सूने पथ, कुछ तेरी
सूनी घड़ियों को,
ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोड़े जाता हूँ।

जब प्रात विहगम-भँवर धरणि
को जाग जगाएँगे,
जब रात गगन के तारे मिलकर
लोरी गाएँगे,
तब उनके कंठों में मेरा भी
कंठ मिला होगा,
मैं एक स्वरों का नाता सबसे जोड़े जाता हूँ।
ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोड़े जाता हूँ।

हर किरण-कली-तितली तिनके
पर मैं हूँ बलिहारी,
है मुझको प्यारे इस दुनिया के
सब नर, सब नारी,
बंधन कोई भी बांध नही
मुझसे तोडा जाता,
खुद मुझको अचरज क्यो सबसे मुँह मोडे जाता हूँ।
ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोडे जाता हूँ।

मेरे रथ मे सूरज-चदा के
चक्के है जोडे,
हैं खीच रहे जिसको अबर से
नव ग्रह के घोडे,
है कोडे और लगाम काल के
निमम हाथो मे,
मै इस धरती को छोड सहज ही थोडे जाता हूँ?
ध्वनि साथ लिए जाता हूँ, प्रतिध्वनि छोडे जाता हूँ।

९६

मैंने ऐसा कुछ कवियो से सुन रक्खा था
जब घटनाए छाती के ऊपर भार बने,
जब सास न दिल को लेने दे आज़ादी से
टूटी आशाओं के खडहर, टूटे सपने,
तब अपने मन की बेचैनी को छदो मे
सचित कर कोई गाए और सुनाए तो
वह मुक्त गगन मे उडने का सा सुख पाता।
लेकिन मेरा तो भार बना ज्यो का त्यो है,
ज्यो के त्यो बधन है, ज्यो की त्यो बाधाएँ,
मैंने गीतो को रचकर के भी देख लिया।

'वे काहिल हैं जो आसमान के परदे पर
अपने मन की तस्वीर बनाया करते हैं,
कमठ उनके अदर जीवन की सासे भर
उनको नभ से धरती पर लाया करते हैं।'
आकाशी गगा से गन्ना सीचा जाता,
अबर का तारा दीपक बनकर जलता है,
जिसके उजियारे बैठ हिसाब किया जाता।

उसके जल म ग्रव ख्याल नही वहते ग्राते,
उसके दृग से ग्रव झरती रस की वूद नही,
मैंने सपना का सच करके भी देख लिया।

यह माना मैंने खुदा नही मिल सकता है
लदन की धन-जोवन-गर्वीली गलियो म,
यह माना उसका ख्याल नही ग्रा सकता है
पेरिस की रसमय रातो की रगरलियो म,
जो शायर को है शानेखुदा उसम तुमको
शतानी गोरखधधा दिखलाई देता,
पर शेख, भुलावा दो उनको जो भोले है।
तुमने कुछ ऐसा गोलमाल कर रक्खा था,
खुद ग्रपने घर मे नही खुदा का राज मिला,
मैंने कावे का हज करके भी देख लिया।

रिंदो ने मुझसे कहा कि मदिरा पान करो,
गम गलत इसीसे होगा, मैंने मान लिया,
मैं प्याले मे डूवा, प्याला मुझमे डूवा,
मित्रो ने मेरे मसूवे को मान दिया।
वदा ने मुझसे कहा कि यह कमजोरी है,
इसको छोडो, ग्रपनी इच्छा का वल देखो,
तो ला, मैंने उनका कहना भी कान किया।
मै वही, वही पर गम हैं, दुर्वलताएँ हैं,
मैंने मदिरा को पीकर के भी देख लिया,

मैंने मदिरा को तज करके भी देख लिया।
मैंने काबे का हज करके भी देख लिया।
मैंने सपनों को सच करके भी देख लिया।
मैंने गीतों को रच करके भी देख लिया।

उसके जल मे अब ख्याल नही बहते आते,
उसके दृग से अब झरती रस की बूंद नही,
मैंने सपना को सच करके भी देख लिया।

यह माना मैंने खुदा नही मिल सकता है
लदन की धन जोबन-गर्वीली गलियो म,
यह माना उसका ख्याल नही आ सकता है
पेरिस की रसमय रातो की रगरलियो मे,
जो शायर को है शानेखुदा उसमे तुमको
शतानी गोरखधधा दिखलाई देता,
पर शेख, भुलावा दो उनको जो भोले हैं।
तुमने कुछ ऐसा गोलमाल कर रक्खा था,
खुद अपने घर मे नही खुदा का राज़ मिला,
मैंने काबे का हज करके भी देख लिया।

रिंदा ने मुझसे कहा कि मदिरा पान करो,
गम गलत इसीसे होगा, मैंने मान लिया,
मैं प्याले मे डूबा, प्याला मुझमे डूबा,
मित्रो ने मेरे मसूबे को मान दिया।
बदा ने मुझसे कहा कि यह कमज़ोरी है,
इसको छोडो, अपनी इच्छा का बल देखो,
तो ला, मैंन उनका कहना भी कान किया।
मैं वही, वही पर गम हैं, दुर्बलताएँ हैं,
मैंने मदिरा को पीकर के भी देख लिया,

मैंने मदिरा को तज करके भी देख लिया।
मैंने काबे का हज करके भी देख लिया।
मैंने सपनों को सच करके भी देख लिया।
मैंने गीतों का रच करके भी देख लिया।

९७

रात की हर सांस करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा!

दिवस का मुझपर नही अब
कर्ज बाकी रह गया है,
जगत के प्रति भी न कोई
फर्ज बाकी रह गया है,
जा चुका जाना जहा था,
आ चुके आना जिन्हे था,
इस उदासी के अँधेरे मे बता, मन,
कौन आकर मुसकराएगा?
रात की हर सास करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा!

'वह, कि जो अदर स्वय ही
आ सकेगा खोल ताला,
वह, भरेगा हास जिसका
दूर कोनो म उजाला,

वह, कि जो इस ज़िंदगी की
चीख़ और पुकार को भी
एक रसमय रागिनी का रूप दे दे,
एक ऐसा गीत गाएगा।'
रात की हर साँस करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा!

मौन पर मैं ध्यान इतना
दे चुका हूँ बोलता सा
जान पड़ता, औ' अँधेरा
पुतलियाँ दो खोलता-सा,
लाल, इतना घूरता मैं
एकटक उसको रहा हूँ,
पर कहाँ संगीत है वह, ज्योति है वह
जो कि अपने साथ लाएगा?
रात की हर साँस करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा!

और बारबार मैं बलि-
हार उसपर जो न आया,
औ' न आने का समय दिन
ही कभी जिसने बताया,
और आधी ज़िंदगी भी
कट गई जिसको परखते,

किंतु उठ पाता नहीं विश्वास मन से—
वह कभी चुपचाप आएगा।
रात की हर सांस करती है प्रतीक्षा—
द्वार कोई खटखटाएगा।

९८

ओ भोले, दिग्भ्रात बटोही,
एक रास्ता अब भी है।

'इस पथ पर लुढका तो बस
पाताल पुरी मे ठहरेगा।'
'इसपर बढता तो चट्टानो
से पग-पग टक्कर लेगा।'
'जगल की इस भूल-भुलैया
मे फँस कोई निकला है?'
'वैतरनी जो पार करेगा
पहले, इसको तैरेगा।'
ताड-वृक्ष के ऊपर बैठा
वृद्ध गृद्ध यह कहता है—
'ओ भोले, दिग्भ्रात बटोही,
एक रास्ता अब भी है।'

छुडा लिए कुछ गए और कुछ
खुद ही मुझको छोड चले,
मैने भी उनसे मुँह मोडा
जो मुझसे मुँह मोड चले,

कुछ का साथ निभाना मेरी
रुचि के, बस के बाहर था।
अच्छा है, इस पथ का पथी
सारे बंधन तोड़ चले।
तरु-कोटर के अंदर बैठा
अंधा उल्लू कहता है—
'उन टूटे रिश्तों से तेरा
एक वास्ता अब भी है।'
'ओ भोले, दिग्भ्रांत बटोही,
एक रास्ता अब भी है।'

सुनी कहानी, कही कहानी,
स्वयं कहानी एक बना,
चौथी बात किया करता है
क्या कोई संसार-जना?
कोई पूरी होती, कोई
सिर्फ अधूरी रह जाती।
सुख, दुख, दुविधा छोड़ किसीका
अंत हुआ किसम, कहना?
एक डाल पर बैठा कागा
आंख घुमाकर कहता है—
'जिसका भेद समझना तुझको
एक दास्ता अब भी है।'

'ओ भोले, दिग्भ्रात बटोही,
एक रास्ता अब भी है।'
'उन टूटे रिश्तों से तेरा
एक वास्ता अब भी है।'
'जिसका भेद समझना तुझको
एक दास्तां अब भी है।'

९९

यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है,
कुछ बे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई।

तुम जिस लतिका पर फूली हो, क्यो लगता है,
तुम उसपर आज पराई हो ?
मै ऐसा अपने ताने-बाने के अदर
जैसे कोई बलवाई हो।
तुम टूटोगी तो लतिका का दिल टूटेगा,
मै निकलूगा तो चादर चिरवत्ती होगी।
यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है,
कुछ बे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई।

पर इष्ट जिसे तुमने माना, मैने माना,
माला उसको पहनानी है,
जिसको खोजा, उसकी पूजा कर लेने म
हो जाती पूर्ण कहानी है,
तुमको लतिका का मोह सताता है, सच है,
आता है मुझको बडा रहम इस चादर पर,
निर्माल्य देवता का बनने का व्रत लेकर
हम दोनो मे से तोड नही सकता कोई।

यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है,
कुछ वे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई।

हर पूजा कुछ बलिदान सदा मांगा करती,
लतिका का मोह मिटाना है,
हर पूजा कुछ विद्रोह सदा चाहा करती,
इस चादर को फट जाना है।
माला गूथी, देवता खडे है, पहनाएँ,
उनके अधरो पर हास, नयन मे आँसू हैं।
आरती देवता के मुसकानो की लेकर
यह अघ्य दृगो का छोड नही सकता कोई।
यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है
कुछ वे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई।

तुमने किसको छोडा? सच्चाई तो यह है,
कुछ अपनापन ही छूट गया।
मैंने किसको तोडा? सच्चाई तो यह है,
कुछ भीतर-भीतर टूट गया।
कुछ जोड हमे भी जाएँगे, कुछ तोड हमे
भी जाएँगे जब बनने को वे सोचेगे,
पर हम-से ही वे छूटेगे, वे टूटेंगे,
जग-जीवन की गति मोड नही सकता कोई।
यह जीवन औ' ससार अधूरा इतना है,
कुछ वे तोडे कुछ जोड नही सकता कोई।

१००

मै अभी जिंदा, अभी यह
शव परीक्षा मे तुम्हे करने न दूगा।

देखता हूँ तुम सफेद नकाब
सिर से पांव तक डाले हुए हो,
क्या कफन को ओढने से
मर गए तुम लोग! मतवाले हुए हो?
नश्तरो की रौ लगी है,
मेज़ मुर्दों को लेटाने की पडी है।
मै अभी जिंदा, अभी यह
शव परीक्षा मे तुम्हे करने न दूगा।

आख मेरी आज भी मानव-
नयन की गूढतर तह तक उतरती,
आज भी अन्याय पर
अगार बनती अश्रुधारा मे उमडती
जिस जगह इसान की
इसानियत लाचार उसको कर गई है।
तुम नही यह देखते तो
मैं तुम्हारी आंख पर अचरज करूंगा।

मैं अभी ज़िंदा, अभी यह
शव-परीक्षा मैं तुम्हे करने न दूंगा।

आज भी आवाज़ जो मेरे
कलेजे से, गले से है निकलती,
गूंजती कितने गलों में
और कितने ही दिलों में है मचलती,
मौन एकाकी पलों का
भंग करती, औ' मिलन में एक मन को
दूसरे पर व्यक्त करती,
चुप न होगी, जबकि मैं भी मूक हूँगा।
मैं अभी ज़िंदा, अभी यह
शव-परीक्षा, मैं तुम्हें करने न दूंगा।

आज भी जो सांस मुझमें
चल रही है वह हवा भर ही नहीं है,
है इसीकी चाल पर
इतिहास चलता और संस्कृति चल रही है,
और क्या इतिहास, क्या संस्कृति,
कि जीवन में मनुज विश्वास रक्खे,
मैं इसी विश्वास को हर
सांस से कहता रहा, कहता रहूँगा।
मैं अभी ज़िंदा, अभी यह
शव-परीक्षा मैं तुम्हें करने न दूंगा।

कागज़ों की भी नकाबें
डालकर इंसानियत कोई छिपाते,
कागज़ों के भी कफन को
ओढ कोई धडकनें दिल की दबाते,
शव परीक्षा के लिए
तैयार जो हैं शव प्रथम वे बन चुके हैं,
किंतु मेरे स्वर निरर्थक,
हैं, अगर वे हैं न पर्दों को हटाते,
हैं न दिल का खटखटाते,
हैं न मुर्दों को हिलाते औ' जगाते।
मैं अभी मुर्दा नहीं हूँ,
और तुमको भी अभी मरने न दूगा।
मैं अभी जिंदा, अभी यह
शव परीक्षा मैं तुम्हे करने न दूगा।

विलियम बट्लर ईट्स के प्रति

[टिप्पणी]

विलियम बटलर ईट्स (१८६५-१९३९) के नाम से इस देश के लोग अपरिचित नहीं हैं। उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के अंग्रेजी अनुवाद की पंक्ति-पंक्ति सुधारी थी, प्रकाशन में सहायता दी थी, और उसकी भावमयी भूमिका भी लिखी थी।

ईट्स ने १९वीं शताब्दी के अंतिम दशक में काव्य क्षेत्र में प्रवेश किया, जो अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में 'ह्रास युग (डिकेडेंट पीरियड)' के नाम से प्रसिद्ध है। यह वाल्टर पेटर और आस्कर वाइल्ड के 'कला कला के लिए' सिद्धांत का युग था। अपने समकालीन कवियों में केवल ईट्स ही ऐसे निकले जो युग की अस्वस्थ प्रवृत्तियों से संघर्ष कर ऊपर उठे और अपने जीवन के अंत तक अपने समय के सबसे बड़े और प्रतिनिधि कवि माने जाते रहे।

इसका कारण यह था कि ईट्स को आयरलैंड के पुनर्जागरण से प्रेरणा और शक्ति मिली थी। प्राणवान साहित्य जातियों के प्राणमय जीवन और इतिहास से ही उद्भूत होता है। उन्होंने आयरलैंड के राष्ट्रीय आंदोलन को अपनी कृतियों से बल और संबल प्रदान भी किया था।

उनकी लेखनी लगभग पचास वर्ष तक अनवरत चलती रही। उनकी आँखों ने स्वप्न और सत्य दोनों की दुनिया देखी और दोनों को निर्भीक वाणी दी।

स्वस्थ साहित्य के पीछे किसी स्वस्थ धर्म, दर्शन अथवा आस्था की आवश्यकता में उनका दृढ़ विश्वास था। पर इस युग में विज्ञान ने तर्क, संदेह और शंका के विस्फोटों से इन मान्यताओं के समय सिद्ध प्रासादों को जैसे नींव से उड़ा दिया था। किसी परंपरा की खोज और स्थापना के

प्रयत्न म इटस ने कहा कहा की खाक नही छानी । प्राचीन यूनान और मिस्र के विचारक, मध्यकालीन योरोपीय कीमियागर, यहूदियो का 'कब्बाला', भारतीय दशन, रहस्यवादी जैकब बहमेन और स्वीडेनबाग, मदाम ब्लवेटस्की की थियोसोफी—क्या-क्या उनकी खोज के विषय नही रहे।

इस अध्यवसाय म वे यहूदियो के 'कब्बाला स विशेष प्रभावित हुए, जिसके जीवन दशन का मुख्याश साप और तीर के रूपक से अभिव्यक्त होता है—साप जिसकी गति गोलाकार होती है और तीर जो सीध जाता है। इट्स ने इन दोनो को अपने ढग से तितली और बाज की गति मानी है। जिस समय म डबलिन में ईट्स के पुस्तकालय मे उनकी पाडुलिपिया का निरीक्षण कर रहा था, एक दिन ईट्स की विधवा पत्नी जाज ईटस सहसा मेरे पास आई। एक डिब्बी स उन्होने एक अँगूठी निकाली। उसके ऊपर तितली और बाज की आकृतिया बनी थी। श्रीमती ईटस ने बताया कि उनके पति इसे अपने दाहिने हाथ की कनिष्ठा में पहना करते थे। उ होने जिद की कि म उसे पहनू। और जब मैंने पहन ली तो बोली, 'यह तुमको बिल्कुल ठीक आई विली (विलियम) की कनिष्ठा बिल्कुल तुम्हारी जसी थी। मैं किन भावो म उस समय डूब गया बताना कठिन है।

केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी मे पी एच० डो० का जो थीसिस मने प्रस्तुत की, उसका विषय था 'ईटस का तन्त्रवाद। इसके लिए मुझे उनकी कवि ताओ को आलोचक की तक-बुद्धि से पढना पडा और मने कुछ नई बाते खोज निकाली। पर सहृदय पाठक की सवेदनशीलता से मन उनसे आनद ही अधिक उठाया। इन दोना क्रियाओ का सामजस्य करना रेखा और वृत्त मे सामजस्य करने के समान था। इसके लिए मन एक नए रूपक का उपयाग किया है—माझी और तराक का। शेष बाते कविता से स्पष्ट होगी।

यह टिप्पणी इस आशा से लिखी गई है कि इसके द्वारा ईटस पर लिखी मेरी रचना आसानी से समझी जा सकेगी।

० ० ०